# शोध सरोवर पत्रिका

आरती, वषुतक्काटु, तिरुवनंतपुरम-695 014, केरल राज्य।

RNI No. KERHIN/2017/70008 ISSN No.2456-625 X

वर्ष 9 अंक 34 | **त्रैमासिक हिन्दी शोध पत्रिका** | 10 जनवरी, 2025



**पीयर रिव्यू समिति :**

डॉ.शांति नायर
डॉ.के श्रीलता
डॉ.बी.अशोक

**मुख्य संपादक**

डॉ.पी.लता

**प्रबंध संपादक**

डॉ.एस.तंकमणि अम्मा

**सह संपादक**

प्रो.सती के
डॉ.एस.लीलाकुमारी अम्मा
श्रीमती वनजा पी

**संपादक मंडल**

डॉ.बिन्दु सी.आर
डॉ.षीना यू.एस
डॉ.सुमा आई
डॉ.एलिसबत जोर्ज
डॉ.लक्ष्मी एस.एस
डॉ.धन्या एल
डॉ.कमलानाथ एन.एम
डॉ.अश्वती जी.आर


**इस अंक में**


| | | |
|---|---|---|
| संपादकीय | | 3 |
| हृषिकेश सुलभ के नाटक 'धरती आबा' में चित्रित जनजातीय जीवन –एक झलक | : अनूप पी | 5 |
| ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियों में विद्रोह और सामाजिक जागृति | : डॉ. प्रीति के | 11 |
| राष्ट्र के पुनःनिर्माण में राजभाषा हिन्दी का स्थान | : डॉ. गोपकुमार जी | 14 |
| थर्ड जेंडर समुदाय के संघर्ष और व्यथा का यथार्थ | : डॉ. अमृता सिंह | 16 |
| : महेंद्र भीष्म कृत 'किन्नर कथा' के विशेष संदर्भ में वैष्णव संत मध्वाचार्य | : डॉ.षीबा शरत.एस | 22 |
| निर्मल वर्मा के कथा साहित्य में व्यक्तित्व चिंतन | : कु. ज्योति | 24 |
| सुब्रह्मण्य भारती की कविताओं में राष्ट्रीय चेतना | : डॉ.सुमा आई | 29 |
| समाज में अनुपस्थिति का दंश झेलने को मज़बूर थर्ड जेंडर की गाथा: समकालीन हिंदी कहानियों के विशेष संदर्भ में | : डॉ. नीरजा वी एस | 35 |
| हज़ारीप्रसाद द्विवेदी के निबंधों में 'फूल' भारतीय संस्कृति और जीवन के प्रतीक | : सुजाता कुमारी | 39 |
| वीरेन्द्रजैन के उपन्यास 'डूब' में चित्रित विस्थापन की विभीषिका | : सुधा जे | 42 |
| उत्तराखण्ड का जाड़-भोटिया समुदाय: एक सामाजिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन | : उदय प्रकाश | 45 |


**यू जी सी से अनुमोदित पत्रिका**

## लेखकों से निवेदन

भाषा, साहित्य, समाज एवं संस्कृति पर लिखी गयी स्तरीय मैलिक तथा अप्रकाशित रचनाएँ भेजें। प्राकशनार्थ अनूदित रचनाओं के साथ मूल लेखकों से प्राप्त सहमति पत्र भी भेजें। रचनाएँ हिंदी यूनिकोड मंगल फॉन्ट में टंकित होनी चाहिए। लेख के प्रारंभ में लेख का सार अपेक्षित है जो अधिकतम 150 से 200 शब्दों के मध्य हो। सार में लेख लिखने का उद्देश्य अवश्य परिलक्षित होना चाहिए। लेख के अनुरूप 5 से 7 'की वर्ड' (बीज शब्द) भी लिखें। लेख को यथोचित उपशीर्षकों में विभाजित करके लिखें। लेख के अंत में निष्कर्ष अवश्य दें। शब्द सीमा 2500 से 3000 शब्दों की हो। आलेख के अंत में संदर्भ ग्रंथों की सूची ए.पी.ए. के प्रारूप में हो। लेख भेजते समय अपने नाम, पता, फोन नंबर एवं लेख का शीर्षक ई-मेल में अवश्य लिखें। इस आशय का एक घोषणा-पत्र प्रस्तुत कर दें कि लेख मौलिक है, अप्रकाशित है, भविष्य में इससे संबंधित किसी भी विवाद के लिए लेखक उत्तरदायी होंगे।

रचना के अंत में अपना पूरा डाक पता, मोबाइल नंबर और ई-मेल पता अंकित करें। संक्षिप्त जीवन-परिचय और फोटो भी भेजें।

**डॉ.पी.लता**
संपादक
शोध सरोवर पत्रिका

| |
|---|
| मूल्य : एक प्रति रु.100/- |
| वार्षिक शुल्क रु.400/- |

---

पत्रिका के संबंध में अधिक जानकारी केलिए संपर्क करें - डॉ.पी.लता (संपादक, शोध सरोवर पत्रिका; मंत्री, अखिल भारतीय हिन्दी अकादमी), आरती, टी.सी. 14/1592, फोरस्ट ऑफीस लेन, ई-28, वषुतक्काटु, तिरुवनन्तपुरम - 695 014, केरल राज्य।

फोन : 9946679280,9946253648

ई-मेल : akhilbharatheeyhindiacademy@gmail.com

संपादकीय

# मकर ज्योति और शास्ता दर्शन

दक्षिण भारत के केरल राज्य का एक प्रसिद्ध मंदिर है 'शबरिमला श्री धर्मशास्ता मंदिर'। यह 914 मीटर ऊँचाई पर स्थित है। यह संसार के ही सर्वाधिक भक्त दर्शन करनेवाले मंदिरों में एक है। यहाँ शास्ता (अय्यप्पन) के दर्शन के लिए प्रतिवर्ष करोड़ों भक्त आते हैं। इस मंदिर की 'मकर ज्योति' प्रसिद्ध है। मकर संक्रांति के दिन मंदिर के पासवाले जंगल में जो ज्योति दिखती है वही 'मकर ज्योति' है। इस ज्योति के दर्शन के लिए इस दिन लाखों भक्त आते हैं। यह ज्योति प्रकट होते समय ऊपर चमगादड़ भी उड़ता है। 'मकर ज्योति' को मलयालम में 'मकर विलक्कु' कहते हैं। 'विलक्कु' का अर्थ है 'दीप'।

केरल राज्य के पत्तनंतिट्टा जिले में रान्नी तालुक में पेरिनाटु गाँव की एक पहाड़ी है 'शबरी मला'। मलयालम शब्द 'मला' का अर्थ है 'पहाड़ी'। यहाँ के मंदिर की मूर्ति 'धर्म शास्ता' की है। 'धर्म शास्ता' धर्म के संरक्षक माने जाते हैं। श्री धर्मशास्ता के हरिहर पुत्र, अय्यप्पन, मणिकंठन, अय्यनार, शबरीशन आदि नाम भी हैं।

श्री धर्मशास्ता की जन्मकथा तथा श्री धर्मशास्ता मंदिर की स्थापना का इतिहास इस प्रकार हैं- पत्तनंतिट्टा जिला के पंतलम के राजा राजशेखर पांड्यन नीतिमान और धर्मनिष्ठ थे, किन्तु उन्हें निस्संतान होने का दु:ख था। राणी और राजा पुत्र लब्धि के लिए भगवान शिव की पूजा करते रहे। असुरों के राजा महिषासुर के अमानुषिक व्यवहारों से भयभीत होकर जनता ने दुर्गादेवी की शरण ली तो देवी ने महिषासुर का वध किया। महिषासुर की भगिनी महिषी ने अपने भाई की हत्या का बदला लेना चाहा और ब्रह्मदेव से यह वर प्राप्त किया कि विष्णु (हरि) और शिव (हरन) को पैदा होनेवाला पुत्र मात्र अपना वध कर सकें। वर की प्राप्ति के बाद महिषि देवलोक में जाकर हमला करने लगी। देवताओं ने विष्णु की शरण ली, तो उन्होंने मोहिनी वेश में शिव से जुड़कर एक शिशु को जन्म दिया। उस शिशु को शिवभक्त तथा निस्संतान पंतलम राजा के संरक्षण में पालने का निश्चय भी किया।

पंपा नदी तट के वनप्रांत में शिकार के लिए गए राजा को वह शिशु प्राप्त हुआ। तब वहाँ प्रकट हुए एक साधु ने भविष्य वाणी दी कि जब बच्चा 12 साल का होगा तब उसका दिव्यत्व विदित होगा। बच्चे के गले में घंटी (मलयालम में 'मणि') लगी माला देखकर उसे 'मणिकंठन' नाम देने का उपदेश भी दिया। राजा शिशु को लेकर राजमहल में आये तो मंत्री को छोड़ बाकी सब खुश हुए। मंत्री निस्संतान राजा के बाद शासनाधिकार पाने की लालसा में थे। मणिकंठन थोड़ा बड़ा हुआ तो उसको राजा ने गुरुकुल में भेजा। इस शिष्य की असामान्य प्रतिभा और दिव्यत्व को गुरु ने पहचाना। विद्याभ्यास की समाप्ति के दिन मणिकंठन से गुरु की प्रार्थना यह थी कि अपने अंधे और बधिर बेटे की कमियाँ दूर करें। मणिकंठन ने गुरु पुत्र के सिर पर हाथ रखा तो गुरु पुत्र को दर्शन शक्ति और बोलने की शक्ति प्राप्त हुई।

इस दौरान पंतलम की रानी के अपना एक बेटा भी पैदा हुआ। मंत्री ने रानी को समझाया कि राजा के अपने एक बेटे के रहते मणिकंठन को वारिस बनाना अनुचित है। मंत्री के उपदेश पर भरोसा रखकर राणी ने बीमार होने का बहाना किया। मंत्री ने वैद्य से कहलाया कि राणी के इलाज के लिए व्याघ्र का दूध ज़रूरी है। मणिकंठन ने ज़िद की तो जंगल जाने की अनुमति राज से प्राप्त हुई। राजा ने कुछ सैनिकों को साथ भेजना चाहा तो मणिकंठन का जवाब था कि शोरगुल होने से व्याघ्र भाग जाएगा। जाते वक्त बालक थोड़ा खाना और शिवभक्ति सूचक तीन आँखोंवाला एक नारियल भी साथ लिया। जंगल में बालक के साथ महादेव के पंचभूत भी जुड़ गये। पंचभूतों से देवलोक में महिषी के अत्याचारों का पता चला तो मणिकंठन ने देवलोक से महिषि को धरती में अषुता नदी तट पर फेंक दिया। वहाँ दोनों के बीच घमासान युद्ध के दौरान महिषी ने हरिहर पुत्र को पहचान ली और प्रणाम किया। महिषी शापमुक्त

होकर मालिकप्पुरत्तम्मा बनी। उसने मणिकंठन की संगिनी बनने की कामना प्रकट की, तो जबाब मिला कि मणिकंठन नित्य ब्रह्मचारी होने से उसे भगिनी का स्थान दिया जायेगा। भगवती के संकल्प में शबरिमला में मालिकप्पुरम का भी एक मंदिर है।

महिषि का वध किये मणिकंठन को महादेव ने दर्शन दिया और कहा कि मणिकंठन के अवतारोद्देश्यों में एक निभाया गया है और एक शेष है। देवेन्द्र व्याघ्र के रूप में मणिकंठन के साथ पंतलम राजमहल पहुँचे। उनके साथ अन्य देवता व्याघ्र के बच्चों के रूप में तथा देव स्त्रियाँ मादा व्याघों के रूप में आयीं। विस्मय में खड़े रहे पंतलम राजा के समक्ष वही साधु प्रत्यक्ष हुए, जिन्हें जंगल में शिशु (मणिकंठन) की प्राप्ति के दिन देखा था। साधु ने मणिकंठन का अवतारोद्देश्य बता दिया, तो राजा ने मणिकंठन का चरण स्पर्श किया और यह भी कहा कि अब व्याघ्र के दूध की ज़रूरत नहीं है। राणी रोगमुक्त हुई हैं। बालक को हिंस्र जानवरोंवाले जंगल में भेजते वक्त मंत्री और राणी का विचार था कि बालक वापस नहीं आयेगा। तब बालक मात्र 12 साल का हुआ था। राजा ने धोखा दिये मंत्री को दंड देने की बात कही तो मणिकंठन का जवाब था कि सब घटित हुए हैं दैवहित से।

अवतारोद्देश्य पूर्ण होने से मणिकंठन को देवलोक में जाने का समय हुआ। तब राजा ने मणिकंठन की स्मृति में एक मंदिर बनाने को उचित स्थान सुझा देने को कहा। तब बालक मणिकंठन ने जो बाण चलाया, वह पहाड़ी जंगल में वहाँ लगा, जहाँ भक्त शबरी ने मतंग ऋषि के उपदेशानुसार श्रीराम-दर्शन की प्रतीक्षा में तप किया था और दर्शन मिलने पर अपने देवता को मात्र मीठे फल देने के उद्देश्य से पहले खुद चखकर वह फल श्रीरामचन्द्रजी को खिलाया था। उस स्थान पर मंदिर का निर्माण करने को सुझाकर बालक गायब हुआ। राजा राजशेखर ने वहाँ 18 सीढ़ियों के ऊपर श्रीमंदिर का निर्माण करवाया, वही 'शबरिमला श्री धर्मशास्ता मंदिर' है। ऐसा भी ऐतिह्य है कि परशु फेंककर समुद्रतल से केरल का निर्माण किये भार्गव राम (परशुराम) ने अय्यप्पन की मूर्ति उकेरकर एक 'मकर संक्रांति' के दिन यहाँ प्रतिष्ठित किया। यहाँ की मूर्ति स्वयंभू भी मानी जाती है। यह मूर्ति चिनमुद्रा (अंतर्ज्ञान की स्थिति) में बैठती है। चिनमुद्रा वह हस्तमुद्रा है, जिसमें दायें हाथ के अंगूठे और तर्जनी के अग्रभागों को जोड़कर वृत्ताकार में और बाकी ऊँगलियों को खुला रथा जाता है। प्राय: 41 दिन ऐहिक सुखों से मुक्त रहकर व्रतानुष्ठान करके भक्त अय्यप्पन के दर्शन के लिए यहाँ पहुँचते हैं। विशवास है कि मणिकंठन ने इस मूर्ति में विलय किया। आजकल कार्तिक महीने के शुरू से प्रतिदिन 80,000 से ज़्यादा भक्त शास्ता का दर्शन करते हैं। इरुमुटिक्केट्टु (विशेष प्रकार की थैली, जिसके दोनों छोरों में भक्त द्वारा पूजा सामग्री तथा अन्य ज़रूरी चीज़ें रखी जाती हैं।) सिर पर रखके भक्त अठारह सीढ़ियाँ चढ़कर शास्ता का दर्शन करते हैं। बिन जाति भेद और धर्म भेद के सब व्यक्ति यहाँ दर्शन कर सकते हैं। इतना कि यहाँ के पुजारी ब्राह्मण कुल के रहते हैं।

शबरिमला में शास्ता की मूर्तिवाले प्रधान पूजागृह के पास ही शास्ता के प्रिय मित्र वावर, जो मुसलमान धर्म के थे, के लिए भी एक आरधनालय है। वावर स्वामी की प्रतिष्ठा के प्रतीक रूप में यहाँ एक शिला फलक ही स्थापित है।

चार वेदों के चुनिन्दे चार वाक्य 'महावाक्य' माने जाते हैं, जैसे- 'प्रज्ञानम् ब्रह्म' (अर्थात् 'ज्ञान ब्रह्म चैतन्य है।') 'अयमात्मा ब्रह्म' (अर्थात् 'यह आत्म चैतन्य है ब्रह्म'), 'अहं ब्रह्मास्मि' (अर्थात् 'मैं ब्रह्म हूँ'।), 'तत्वमसि' (अर्थात् 'वह तुम ही हो'।) ये महावाक्य क्रमश: ऋग्वेद, अथर्ववेद, यजुर्वेद और सामवेद के हैं। शबरिमला में श्री धर्मशास्ता के पूजागृह के किवाड़ के ऊपर 'तत्वमसि' लिखा फलक चिन्मयानंद स्वामी के सुझाव से 8 दिसंबर 1982 को स्थापित हुआ था। 'तत्वमसि' का मतलब है- तत् (वह ब्रह्म) त्वं (तू भक्त) असि (है)। यह ब्रह्म और भक्त का अभेदसूचक महावाक्य है। जो भक्त के अंदर बसते परमात्मा की याद दिलाता है। शबरिमला में जानेवाले भक्तों को अय्यप्पन पुकारते हैं और श्रीमंदिर के अंदर बसनेवाले देव भी अय्यप्पन हैं ।

यह अन्य मंदिरों जैसा नहीं है। यहाँ रोज़ मूर्ति की पूजा नहीं होती है। नवंबर-दिसंबर महीनों में कार्तिक मास की पहली तारीख से लेकर 41

दिनों में यानी मंडल काल में, मकर ज्योति उत्सव के दिनों में तथा परंपरागत मलयालम कलेंडर के हर महीने की पहली तारीख से लेकर पाँचवीं तारीख तक के दिनों में भक्त यहाँ दर्शन कर सकते हैं। इस शास्ता मंदिर के एक कोने में स्थित पोन्नम्बलमेटु पहाड़ी के ऊपर स्थित वन मंदिर में मकरं मास (पुष्य मास) की पहली तारीख को तीन बार जलायी जानेवाली ज्योति है 'मकर ज्योति'। सच्चे शास्ता भक्त ऐहिक सुखों से दूर रहकर काली धोती और विशेष प्रकार की माला (विशेषकर रुद्राक्ष माला) पहनकर 41 दिनों का व्रतानुष्ठान करके शास्ता के दर्शन केलिए शबरिमला मंदिर में जाते हैं। संख्या 41 कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। एक ऐतिह्य है कि महिषि वध के बाद मणिकंठन ने 41 दिनों का तप किया था। ज्योतिष शास्त्र की दृष्टि से सौर वर्ष (365 दिन) और चांद्र वर्ष (324 दिन) के दिनों का अंतर 41 है। 41 दिनों का यह अंतर हर भक्त को धर्मचर्या करने तथा अपने को शास्ता दर्शन केलिए समर्पित करने की अवधि मानी जाती है।

डॉ.पी.लता
संपादक, शोध सरोवर पत्रिका
(मंत्री, अखिल भारतीय हिन्दी अकादमी)।

# हृषिकेश सुलभ के नाटक 'धरती आबा'में चित्रित जनजातीय जीवन –एक झलक

**◆अनूप पी**

**शोध सार –** 'नाटक' साहित्य की सबसे प्रभावशाली विधाओं में से एक है। नाटक समाज के अशिक्षित तथा निम्न वर्ग के लोगों से लेकर शिक्षित एवं उच्च वर्ग के लोगों के साथ मिलकर विचारों का आदान-प्रदान करने में सक्षम है और यही नाटक की सफलता है।मानव जीवन के निकट होने के कारण समय के साथ नाटक के विषयों में भी बदलाव आ गये। आम लोगों के जीवन की समीक्षा के साथ-साथ समाज के हाशिएकृत लोगों का संघर्षमय जीवन भी साहित्य-सृजन का विषय बना।

सन् 2010 में प्रकाशित हृषिकेश सुलभ का 'धरती आबा' एक ऐसा नाटक है जो भारतीय आदिवासी नेता बिरसा मुंडा के व्यक्तित्व और उज्ज्वल चरित्र पर प्रकाश डालता है।इसमें लेखक बिरसा के चरित्र के माध्यम से मुंडा जनजाति के संघर्षपूर्ण जीवन को पाठकों के सामने प्रस्तुत करता है।

**बीज शब्द -**आदिवासी, बिरसा मुंडा, धरती आबा, उलगुलान आंदोलन, जनजाति, समाज आदि।

उन्नीसवीं सदी से शुरू हुई भारत के स्वतंत्रता-संग्राम की कहानी अत्यंत ज्वलंत और गरिमामय है। कुछ इतिहासकारों का मानना है कि स्वतंत्रता-संग्राम की शुरुआत सन् 1857 के विद्रोह से हुई है, लेकिन वास्तव में ब्रिटिश शासन के आरंभ से ही भारत के कोने-कोने में उनके खिलाफ़ आवाज़ उठने लगी थी। ऐसे कई अज्ञात, अनगिनत संघर्षों और लड़ाइयों की रंगभूमि है भारत। इसप्रकार भारतीय स्वाधीनता-संग्राम के इतिहास में आदिवासियों, संथालों, भीलों, मुंडाओं तथा अन्य जनजातियों का योगदान महत्वपूर्ण एवं अविस्मरणीय है। इसमें मुंडा जनजाति के नेता एवं वीर योद्धा थे बिरसा मुंडा। सन् 2010 में प्रकाशित हृषिकेश सुलभ के 'धरती आबा', बिरसा मुंडा के उज्ज्वल चरित्र पर प्रकाश डालनेवाला एक इतिहास-मिथक मिश्रित नाटक है।प्रस्तुत नाटक में नाटककार मुंडा जनजाति के शक्तिशाली नेता बिरसा मुंडा को केंद्र में रखकर समाज के अन्याय और कुशासन के विरुद्ध लड़ने का आह्वान दे रहे हैं।

सामाजिक और राजनीतिक विषयों पर अपनी लेखनी चलानेवाले समकालीन लेखक हैं

हृषिकेश सुलभ। पुराने समय की तुलना में आजकल समाज में हाशिएकृत लोगों की संख्या बढ़ती जा रही है। रंग, जाति, लिंग आदि के आधार पर यह भेदभाव हम देख सकते हैं। जैसे-जैसे लोग शिक्षित होते जा रहे हैं, उसके अनुसार उनके दिमाग का विस्तार नहीं हो रहा है, बल्कि संकुचित होता जा रहा है। यह सोचने की बात है। समाज के यथार्थ के साथ-साथ वहाँ हो रहे अन्याय के खिलाफ़ आवाज़ उठाने का एक माध्यम है साहित्य-सृजन। आम आदमी की तरह अशिक्षित लोग भी नाटक जैसी साहित्यि विधा के माध्यम से बातों को समझ सकते हैं, यही प्रभावात्मकता नाटक की सबसे बड़ी विशेषता है। प्रस्तुत नाटक की रचना के लिए हृषिकेश सुलभ ने गंभीर शोध और अध्ययन किया है, इसकी झलक हमें हर एक पंक्ति पढ़ते वक्त मिलती है।

इस लघु शोध प्रबंध के माध्यम से 'धरती आबा'नाटक में बिरसा मुंडा का चित्रण किस प्रकार किया गया है, उस समय की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि क्या थी,तत्कालीन समाज के आदिवासी लोगों के जीवन का मूल्यांकन आदि पर प्रकाश डालने का प्रयास मैंने किया है।

**ऐतिहासिक पृष्ठभूमि**

उन्नीसवीं सदी के अंत में भारत के झारखण्ड की राजधानी रांची के दक्षिण इलाकों में मुंडा जनजाति के नेता बिरसा मुंडा के नेतृत्व में हुआ आंदोलन है 'उलगुलान आंदोलन'। मुंडा जनजाति भारत के मध्य-पूर्वी क्षेत्रों में रहनेवाला एक आदिवासी समुदाय है और इनकी अपनी शासन प्रणाली है। मुंडा जनजाति की उत्पत्ति भारत में हुई थी और सन् 2021 की अनौपचारिक जनगणना के अनुसार, लगभग 3.8 लाख मुंडा जनजाति के लोग भारत के विभिन्न राज्यों में रहते हैं। बिरसा मुंडा एक ऐसे वीर पुरुष हैं जिन्हें मुंडा लोग भगवान के समान मानते हैं। ऐसा माना जाता है कि बिरसा मुंडा का जन्म 15 नवंबर 1875 को झारखंड के एक आदिवासी परिवार में हुआ था। उनके माता-पिता सुगना और करमी थे।जॉन हॉफमैन ने अपनी पुस्तक 'एनसाइक्लोपीडिया मुंडारिका:भाग 2'में बिरसा मुंडा के बारे में कुछ इस तरह व्यक्त किया है, "... his eyes bright and full of intelligence and his complexion much lighter thanthat of most Mundas. … He was between 20 and 25 years ofage when he started the rumour that he had been appointed by God to save his race. … his most ardent supporters, and they encouraged people to make the pilgrimage to the new prophet, whom they called *dharti aba*."[1]("उनकी आँखों में बुद्धिमत्ता की चमक थी और उनका रंग साधारण मुंडा लोगों की तुलना में कम काला था। ...उनकी उम्र 20 से 25 साल के बीच थी, जब उन्होंने यह अफवाह फैलाई कि भगवान ने उन्हें अपनी जाति को बचाने के लिए नियुक्त किया है। ... उनके सबसे प्रबल समर्थक लोगों को नए पैगंबर की तीर्थयात्रा करने के लिए प्रोत्साहित किया, जिन्हें वे 'धरती आबा' कहते थे।") बिरसा मुंडा के जीवन के बारे में ऐसी बहुत सारी बातें हमें इतिहास के पन्नों में देखने को मिलती हैं।ऐसे तथ्यों को ऐतिहासिक रूप में, लेकिन विषय की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करनेवाला एक सफल नाटक है 'धरती आबा'। यदि हम इसे मंचीयता की दृष्टि से देखें तो इसमें नाटकीय तत्वों का समुचित प्रयोग देख सकते हैं, चाहे वह भाषा में हो या रंग-सज्जा में।

जब भारत अंग्रेज़ों के अधीन था, तब यहाँ के लोगों की स्थिति बहुत दयनीय थी। बिरसा मुंडा तत्कालीन समाज के एक शिक्षित व्यक्ति थे। इसलिए वे अंग्रेज़ों के शोषण को भली-भाँति समझते थे। परन्तु अपनी जनजाति के लोगों की अज्ञता को समझते हुए उन्होंने स्वयं को आन्दोलन

का नेता घोषित कर दिया। उनके सम्मानित व्यक्तित्व के कारण लोग इससे पूर्ण सहमत थे और वे लोग उनकी बातें सुनते थे। एक सच्चे मार्गदर्शक के अभाव से त्रस्त वहाँ की जनता के लिए यह एक नया जोश था। लोग बिरसा के आदेश का इंतज़ार करने लगे। बाद में लोग उन्हें 'धरती आबा' अर्थात् 'धरती के पिता' पुकारने लगे। उन्नीसवीं सदी के अंत में बिरसा मुंडा के नेतृत्व में चलाया गया 'उलगुलान आंदोलन' भारत में उस समय का सबसे बड़ा और संघर्षशील लोकतांत्रिक आंदोलन था। 'उलगुलान आंदोलन' का मुख्य उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ़ भूमि स्वामित्व, उत्तराधिकार और न्याय की माँग को आगे बढ़ाना था। बिरसा मुंडा ने अपने अनुयायियों को सामूहिक रूप से आंदोलन में संगठित किया और उन्हें अपनी बहादुरी और नेतृत्व से प्रेरित किया। लेकिन इस लड़ाई में मुंडा लोग परास्त हो गये, फलस्वरूप बिरसा मुंडा को जेल भेज दिया गया।एक बार जब वे बाहर आए तो कुछ ही देर में अंग्रेज़ों ने फिर से उन्हें गिरफ़्तार कर लिया। बाद में यह बहादुर नौजवान जेल में शहीद बन जाता है। बिरसा मुंडा की मृत्यु को लेकर आज भी इतिहासकारों के बीच में मतभेद हैं। फिर भी बहुत सारे लोगों का मानना यह है कि अंग्रेज़ों ने बिरसा को ज़हर दिया था। जो भी हो, 25 साल की उम्र में शहीद बने बिरसा मुंडा की ऊर्जा और क्रांतिकारी सोच ने आगे चलकर भारत के स्वतंत्रता-संग्राम को नई शक्ति प्रदान की। ऐतिहासिक दृष्टि से बिरसा मुंडा का चरित्र कुछ इस प्रकार है।

**नाटकीय पृष्ठभूमि**

'धरती आबा' नाटक में हृषिकेश सुलभ पाठकों या दर्शकों के सामने एक ऐसे बिरसा मुंडा को प्रस्तुत करते हैं जो अपनी भूमि और जनजाति के लिए लड़ना अपना दायित्व समझते हैं। नाटक का नायक बिरसा मुंडा होते हुए भी, इसका कथानक धानी नामक बिरसा के वृद्ध सहयोगी की दृष्टि में विकसित होता है। नाटककार नाटक के प्रारंभ से ही बिरसा और धानी के कथनों के माध्यम से इस बात को स्थापित करते हैं। एक प्रकार से अतीत और वर्तमान के सम्मिश्रण से नाटक आगे बढ़ता है। बिरसा मुंडा का परिवार और गाँव के लोग जेल से उनकी वापसी के इंतज़ार में जूझ रहे हैं। आखिर समय की माँग के अनुसार बिरसा पुनः गाँव में अवतिरत होता है। इस बार उनके आगमन के कुछ विशेष लक्ष्य हैं। इससे गाँववालों में एक प्रकार का आश्वासन पैदा होता है। वे लोग उनसे अपनी शिकायतें और मुसीबतें व्यक्त करते हैं। मुंडा जनजाति के लोगों के अनुसार जहाँ वे रहते हैं वहाँ की ज़मीन और उससे जुड़े सभी तत्त्व एक ही हैं। जिस जंगल में वे रहते हैं, वहाँ के पेड़-पौधे, उनकी शाखाएँ, उनकी पत्तियाँ, तालाब, पशु-पक्षी आदि से अन्योन्याश्रित जीवनशैली वे अपनाए हुए हैं। क्योंकि वे लोग यह देखकर पैदा हुए हैं कि उनके पूर्वज अपनी भूमि के साथ एक प्रकार का सामंजस्य बनाकर रहते थे, इसलिए पृथ्वी उनके लिए माँ के समान है। एक दिन अचानक कुछ विदेशी लोग आकर वहाँ अपना आधिपत्य स्थापित करने की कोशिश करें तो वे क्या करेंगे?अंग्रेज़ों ने कहा कि सारी ज़मीन और जंगल सरकार की हिरासत में रहेंगे। यह मुंडा लोगों के लिए असहनीय था। उनके मन में इसके विरुद्ध लड़ने की सोच और साहस तो था, लेकिन इसके लिए एक अच्छे नेतृत्व का अभाव था। यह बात स्वयं पहचानकर आगे आए योद्धा हैं बिरसा मुंडा। शिक्षित होने के कारण वह ग्रामीणों के बीच पनपे अंधविश्वासों को अपनी प्रवृत्तियों के माध्यम से तोड़ते हैं और उन्हें यह भी समझाते हैं कि विभिन्न धर्मों के लोग और शासक वर्ग सभी उनका शोषण कर रहे हैं। बिरसा का मानना था कि धर्म एक ऐसी चीज़ है, जो उनकी एकता को नष्ट कर देगी। वे कहते हैं, "न पूजूँगा अब किसी को। ... किरस्तान बनकर देख लिया। यीशू की प्रार्थनाओं में अब नहीं उलझनेवाला मैं। तुलसी की पूजा नहीं... उस काले कृष्ण की भी पूजा नहीं। ... वह काला

ज़रूर है, पर काले मुंडाओं का खून नहीं बहता उसकी नसों में।"[2]मरे हुए लोगों को भोजन वगैरह अर्पित करने की प्रथा का भी वे खुलकर विरोध करते हैं, "अनाज पर भूखे का हक़ होता है, देवी-देवताओं का नहीं।"[3] इस प्रकार बिरसा अंधविश्वासों को तोड़कर लोगों में यथार्थ का बोध जगाने की कोशिश करते हैं। इसके बाद बिरसा ने अपनी मुंडा जनजाति के लोगों की एकता के लिए एक धर्म की स्थापना की और खुद को उस धर्म का भगवान घोषित कर दिया। इसके ज़रिए बिरसा लोगों को आदेश देते हैं कि अंग्रेज़ों से कैसे लड़ना है और इसके लिए कैसी तैयारी करनी है।

दूसरे प्रसंग में, जेल में बिरसा एक अंग्रेज़ पुलिस कमिशनर कर्नल गॉर्डन के सामने धर्म और ईश्वर की अपनी अवधारणा व्यक्त करते हैं। बिरसा के अनुसार जेल में बंद करने से भगवान या ईश्वर पर कोई असर नहीं पड़ सकता। इसके लिए वे उनके सामने भगवान कृष्ण का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। कृष्ण भी मुंडा लोगों की तरह काला और निचली जाति के थे। लेकिन इस निचली जाति के काले कृष्ण की पूजा उच्च जाति के ज़मींदार एवं दिकू करते हैं। इस विरोधाभास पर भी बिरसा अपनी उँगली उठाते हैं। इसके साथ ही वह यीशु का उदाहरण भी पेश करते हैं। वे भी कैद थे, लेकिन अपने लोगों की भलाई के लिए उन्होंने फिर से अवतार लेकर समाज को सुधारा।

नाटक में बिरसा के उज्ज्वल चरित्र को व्यक्त करनेवाले कई प्रसंग उपलब्ध हैं - उदाहरण के लिए, उस समय भारत के कोने-कोने में हैजा, पेचिश, प्लेग, चेचक, दस्त, कोढ़ आदि बीमारियाँ फैली हुई थीं। बेहतरीन स्वास्थ्य संसाधनों के अभाव के कारण गाँव के लोग परेशान थे। नाटक में ऐसे 3-4 प्रसंग हैं, जिनमें बिरसा अपने गाँव के लोगों को हैजा और चेचक फैलने पर मार्गदर्शन देते हैं। हैजा के संदर्भ में उनका एक कथन कुछ इस प्रकार था, "रोगी को दूसरों से अलग रखो। नमक सिंझाकर पानी पिलाओ रोगी को। उसके कपड़े कुआँ पर... झरना पर मत छोड़ो। सब के सब पानी सिंझाकर पीना शुरू कर दो। बासी भात मत खाओ। खाना ढँककर रखो।"[4]यहाँ हम एक सच्चे नेता की अपने ग्रामीणों के प्रति देखभाल और प्रेमपूर्ण सलाह देख सकते हैं। इसके बाद जब गाँववाले चेचक के डर से भाग-दौड़ मचाते हैं तब वे उन्हें स्वस्थ रहने की आवश्यकता की चेतावनी देते हैं, "जिसको चेचक नहीं निकली है, वे सब नीम के पत्ते सिंझाकर पानी पी लें। उसी पानी से देह भी पोंछे। जिसको चेचक हुआ है पर दाने नहीं निकले हैं, वे सफेद तुलसी का रस अदरख में मिलाकर पी लें। दाने निकलेंगे और उसे आराम मिल जाएगा। फिर उसे करेले के पत्ते और हल्दी का रस पिलाओ। जो रोगी की सेवा करे, वह दूसरों से अलग रहे। जिनको चेचक नहीं हुई है, वे सब साथ रहें।"[5] यहाँ बिरसा एक चिकित्सा विशेषज्ञ की तरह मामले को समझकर अपने सहवासियों को सही रास्ता दिखाने की कोशिश करते हैं। चंदन लेप करके रोगग्रस्त बच्चों की देख-भाल बिरसा स्वयं करते हैं, क्योंकि यह सब वे अपना दायित्व मानते हैं। वे आगे कहते हैं, "मैं पत्थर का भगवान नहीं हूँ। मैं ज़िंदा हूँ। ... मैं साथ हूँ तुम्हारे। तुम्हारे दुखों में... तुम्हारी पीड़ा में... तुम्हारे बुरे दिनों में... हर जगह तुम्हारे साथ हूँ मैं।"[6] यहाँ तक आते-आते नाटककार बिरसा को एक आदर्श नेता के रूप में पाठकों या दर्शकों के सामने प्रस्तुत करते हैं।

प्रस्तुत नाटक में बिरसा के चरित्र का विश्लेषण करते वक्त सबसे अधिक ध्यान देने योग्य मुद्दा है उनकी विद्रोही भावना। नाटक पढ़ते वक्त हमें बिरसा के एक-एक शब्दों में उनके मन की चिंगारियों की झलक मिलती है। जेल से बाहर आए बिरसा में यह विद्रोही भावना अधिक है। समकालीन हिंदी नाटक के आलोचक डॉ. लव कुमार के शब्दों में, "नि:सन्देह, भगवान और धरती के आबा के रूप में बिरसा मुंडा का जीवन-संघर्ष, मुंडाओं की साँसों में, उनके मन तथा आत्मा में,

उनकी नसों में एक तेज़ तूफान की तरह रहकर गुलामी के बन्धन से मुक्ति के लिए उनमें भरोसा उत्पन्न करने की कोशिश बिरसा मुंडा जैसा आत्मबली योद्धा ही कर सकता था।"[7] इस प्रकार, उलगुलान आंदोलन के पहले कदम के रूप में, बिरसा ने लोगों से कहा कि वे अंग्रेज़ों के लिए काम करना बंद कर दें, उनके चायबागानों और कोयला के खानों में कुली के रूप में काम करना बंद कर दें।उसके बाद वे लोगों को उलगुलान की दो राहों का परिचय देते हैं। एक है कानून का रास्ता या शांति का रास्ता, इसमें बहुत समय बरबाद होने की संभावना है। इसके फायदे और नुकसान के बारे में विस्तार से बताकर उन्हें समझाते हैं। दूसरी राह हथियारों से लड़ने का रास्ता है - किसी को जेल जाना पड़ सकता है, अपनी जान गँवानी पड़ सकती है आदि जोखिमें इस रास्ते में हैं। फिर भी लोग बिरसा के साथ दूसरे रास्ते पर जाने की तैयारी करते हैं। बिरसा के प्रभाव में सारे मुंडा लोग उलगुलान आंदोलन के लिए स्वयं समर्पित थे।

इस बीच बिरसा को मुंडा जनजाति का भगवान मानने से उनके पारिवारिक जीवन में बदलाव आ जाते हैं। अपना बेटा होने पर भी करमी अब बिरसा की देखभाल करने में असमर्थ है। इस अवसर पर नाटककार ने करमी के माध्यम से एक माँ के मन की व्याकुलताओं का ज़िक्र इस प्रकार व्यक्त किया है, "सब सो रहे हैं अपने धरती आबा के भरोसे... अपने भगवान के भरोसे। सिरफ मेरे पास नींद नहीं। मैं सो गई तो मेरे भगवान की कौन देख-रेख करेगा?"[8]जब पूरा गाँव या पूरा समुदाय एक ही व्यक्ति पर निर्भर हो तो उस व्यक्ति की देखभाल कौन करेगा?इसका ध्यान सिर्फ़ उनके परिवारवालों को ही होता है। लेकिन उनके पिता की सोच अलग है। वह अपने जीवन के इस नए मोड़ का आनंद लेता है। लोग उन्हें धरती आबा का आबा मानते हैं। इसलिए वे समाज के आदर-सम्मान का पात्र बन जाते हैं। भर पेट भोजन, साफ़ कपड़े आदि कई सुख सुविधाएँ अब उन्हें प्राप्त हैं। वे सिर्फ़ उस स्थिति का फायदा उठाना चाहते हैं। लेकिन बिरसा की माँ अपने बेटे के संघर्ष को समझती है और उसके भगीरथ प्रयत्न के बारे में सोचकर चिंतित भी होती है।

नाटक में धानी नाम का एक मुंडा चरित्र है, उसे वास्तव में नाटक की समयरेखा के बीच की एक कड़ी के रूप में चित्रित किया गया है। एक तरह से हम धानी को बिरसा के जिगरी अनुयायी के रूप में देख सकते हैं। वह जानता था कि बिरसा किसी भी समय जेल से बाहर आ जाएँगे और उन्हें अंग्रेज़ों से लड़ने के लिए तीरों की ज़रूरत होगी। इसलिए वह कई दिनों से ऐसे विषैले तीरों का इंतज़ाम करने में लगा हुआ था। धानी की तरह भरमी, डोन्का, गया आदि मुंडा लोग भी बिरसा के कंधे से कंधा मिलाकर विद्रोह करते हैं। महिला किरदारों पर नज़र डालें तो बिरसा की माँ करमी का किरदार अहम है। साथ-साथ डोन्का की पत्नी साली भी नाटक के एक महत्वपूर्ण प्रसंग में उलगुलान के लिए अपने पति के साथ पूर्ण रूप से सहयोग देती है।

नाटक की संरचना की ओर देखें तो इसमें कोई दृश्य-विभाजन नहीं है, बल्कि प्रत्येक आदेश के अनुसार यह नाटक एक दृश्य से दूसरे दृश्य की ओर बढ़ जाता है। नाटक में कुल मिलाकर 18 पात्र हैं और नाटककार ने प्रसंग के अनुकूल इन पात्रों को सही जगह पर रखा है। नाटक के शुरू से लेकर अंत तक गीतों का भी सफलतापूर्वक प्रयोग किया गया है, जिससे नाटक और अधिक प्रभावशाली बनता है। विशेषकर उलगुलान आंदोलन से संबंधित गीत बहुत प्रेरणादायक एवं सार्थक है। भाषा पर नज़र डालें तो सभी पात्र पात्रानुकूल भाषा बोलते हैं। हम देख सकते हैं कि नाटक में मुंडा जनजाति के बहुत सारे लोग अनपढ़ हैं, इसलिए बिरसा उनकी भाषा सुधारने का प्रयास करते हैं। उनके कथनों में हम मंत्र के लिए 'मंतर', जेल के लिए 'जेहल', कर्ज़ के लिए 'करजा', मछली के लिए 'मछरी' आदि शब्दों का

प्रयोग भी देख सकते हैं।

निष्कर्ष की ओर जाने से पहले मैं यहाँ बिरसा की माँ करमी का एक कथन उद्धृत करना चाहता हूँ, "पहले मुंडाओं के पास इतना दुख नहीं था।... सब कुछ था हमारे पास। हमारे मंदिर थे... हमारे देवता थे... हमारी धरती थी, पर जब से दिकू आए हम भिखमंगे होते गए।"[9]

**निष्कर्ष**

भारत की अन्य जनता की तरह मुंडा जनजाति भी अपने रीति-रिवाज़ों और विचारधाराओं का पालन करते हुए अपनी भूमि में सामंजस्य से रह रही थी। जब से अंग्रेज़ों ने उनके जीवन में हस्तक्षेप करना तथा उनका शोषण करना शुरू किया, तब से सब कुछ बिगड़ गया। हमें मालूम है कि आदिवासियों के लिए धरती ही सब कुछ है। वे लोग अपनी भूमि और पर्यावरण के साथ पूर्ण सामंजस्य बनाकर रहनेवाले हैं। अंग्रेज़ों के आगमन से वे अपनी ही जगह से झट से पराये हो गए। वही दर्दनाक स्थिति आज भी समाज में मौजूद है। लेकिन यहाँ अंग्रेज़ों की जगह वैश्वीकरण से उभर आई बड़ी-बड़ी बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ यानी कॉर्पोरेट्स हैं, जो विकासशील और अविकसित देशों के गाँवों में आकर वहाँ के लोगों से उनकी ज़मीन और प्राकृतिक संसाधन छीन लेते हैं। साधारण लोग सब कुछ देखते हुए भी असहाय खड़े रहते हैं। निष्क्रिय और बहरी सरकार के खिलाफ़ भी बिरसा अपनी आवाज़ उठाते हैं। इस प्रकार हम इस नाटक को वर्तमान संदर्भ के स्वार्थी जीवन से जोड़ सकते हैं। नाटककार इतिहास और यथार्थ में कल्पना का अंश जोड़कर इसे समन्वित ढंग से प्रस्तुत करने में सफल हुए हैं।

'धरती आबा' नाटक के लिए नाटककार ने हमारे इतिहास के पन्नों से एक अच्छे नायक को ले लिया है। स्वतंत्रता-संग्राम में बिरसा के योगदान को मान्यता देते हुए भारत सरकार ने बिरसा की एक तस्वीर हमारी संसद के संग्रहालय में रखी है। आदिवासी स्वतंत्रता सेनानियों की स्मृति में 2021 से बिरसा की जन्मतिथि, यानी 15 नवंबर को भारत में 'जनजातीय गौरव दिवस'के रूप में मनाया जा रहा है। इस प्रकार बिरसा मुंडा जैसे भारतीय इतिहास के उपेक्षित महान नायकों को समाज में पुनःस्थापित करने का हृषिकेश सुलभ का प्रयास सराहनीय है।

**संदर्भ ग्रंथ सूची**


1. HOFFMANN, JOHN. ENCYCLOPAEDIA MUNDARICA VOL. 2. SUPERINTENDENT, GOVERNMENT PRINTING, BIHAR, PATNA, 1950. Page No. 567.
2. हृषिकेश सुलभ. धरती आबा. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2022. पृष्ठ संख्या 30-31
3. वही, पृष्ठ संख्या 33
4. वही, पृष्ठ संख्या 37
5. वही, पृष्ठ संख्या 39
6. वही, पृष्ठ संख्या 39
7. लव कुमार. हिंदी नाटक के बदलते तेवर. पराग प्रकाशन, कानपूर, 2018. पृष्ठ संख्या 179
8. हृषिकेश सुलभ. धरती आबा. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2022. पृष्ठ संख्या 41
9. वही, पृष्ठ संख्या 61



◆शोधार्थी

स्नातकोत्तर हिंदी विभाग व शोध केंद्र

सरकारी आर्ट्स व साइंस कॉलेज, कालिकट

(कालिकट विश्वविद्यालय से संबद्ध)

e-mail: anoopphd2022@gmail.com

संपर्क – 9633392981

# ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियों में विद्रोह और सामाजिक जागृति

♦डॉ. प्रीति के

दलित कहानी साहित्य मानवतावाद की सशक्त अभिव्यक्ति है। यह जातिविहीन और वर्गविहीन समाज की स्थापना का स्वप्न देखता है, क्योंकि केवल ऐसे समाज में ही वास्तविक सामाजिक न्याय संभव है। यह साहित्य भारत के बहुसंख्यक दलित समाज की पीड़ाओं, उनकी व्यथाओं और उनके भोगे हुए यथार्थ का प्रतिनिधित्व करता है। इन कहानियों का उद्देश्य सामाजिक रूढ़ियों, पाखंडों और अंधविश्वासों को समाप्त करने के लिए संघर्ष करना है। दलित कहानी साहित्य केवल साहित्यिक अभिव्यक्ति ही नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना का भी आंदोलन है। यह शोषित और वंचित वर्ग की पीड़ा और उनके अधिकारों की लड़ाई को स्वर देता है। यह असमानता, अन्याय और रूढ़ियों को तोड़कर एक न्यायपूर्ण और समतामूलक समाज की स्थापना का मार्ग प्रशस्त करता है। वास्तव में दलित साहित्य किसी वर्ण विशेष का न होकर उन सभी लोगों का है जिन्हें किसी न किसी रूप में दबाया गया है।

दलित साहित्य को नई दिशा प्रदान करने में दलित कहानी साहित्य ने भी अपनी अलग भूमिका अदा की है। सन् 1980 के बाद ही हिन्दी दलित साहित्य में कहानी लेखन के प्रति जागरूकता दिखायी देती है। हिन्दी दलित कहानी साहित्य को समृद्ध बनाने में कई साहित्यकारों ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है । इनमें ओमप्रकाश वाल्मीकी, सूरजपाल चौहान, मोहनदास नैमिशराय, डॉ. सुशीला टाकभैरे , जयप्रकाश कर्दम, दयानंद बटोही, डॉ.एन.सिंह, कावेरी, प्रहलाद चंद्रदास, शत्रुघ्न कुमार और कुसुम मेघवाल जैसे साहित्यकारों के नाम उल्लेखनीय हैं । ओमप्रकाश वाल्मीकि की राय में, "हिंदी दलित कहानी की यह यात्रा सहज और सरल नहीं है। यह एक लंबी संघर्षपूर्ण यात्रा है, जो सातवें दशक तक काँटों पर चलते हुए, लहूलुहान होकर भी अपने विस्फोटक तेवर की पहचान बनाने में सफल रही है। दलित कहानी ने समस्याओं का सीधा सामना किया है। उसने अपने सृजनात्मक आक्रोशित स्वर को यथार्थ की भूमि पर खड़ा करके बदलाव के नए आयाम स्थापित किए हैं। यथार्थ की संघर्षपूर्ण स्थितियों, सामाजिक विषमताओं, भेदभाव और अंतर्विरोधों को चित्रित करने की प्रवृत्ति उसने किसी दबाव या प्रतिक्रिया के तहत ग्रहण नहीं की है, बल्कि यह उसका स्वाभाविक और वस्तुनिष्ठ स्वरूप है। आवेगपूर्ण विरोध के माध्यम से परिवर्तन की पक्षधरता उसका जीवन- मूल्य है ।"[1] इन कहानियों में दलित मानव की वेदना, निरंतर संघर्ष करने की अनिवार्यता, सुविधाभोगी लोगों के प्रति उनकी विरोध मुद्रा, प्रतिकूल नरकीय परिस्थितियों में भी जीने की विवशता और अपने मानवीय अधिकारों की प्राप्ति हेतु आत्मसजगता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

हिंदी दलित कहानी साहित्य के विकास में ओमप्रकाश वाल्मीकि की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। उनकी कहानियों में सामाजिक जीवन में व्याप्त विद्रूपताओं, विसंगतियों और विषमताओं की भीतरी जड़ों को बड़ी सूक्ष्मता से अंकित किया गया है। इन कहानियों की अंतर्वस्तु लेखक के अनुभव-जगत की त्रासदियों और दुखों में उपजी सामाजिक संवेदनाएँ हैं, जिन्हें शब्द दर शब्द गहरे अवसाद और यंत्रणा से गुज़रते हुए लिखा गया है। इन कहानियों में गहरी मानवीय संवेदनाएँ और सामाजिक जीवन के सरोकार परस्पर गुँथे हुए दिखाई देते हैं। इनमें उस समाज की मज़बूरियाँ,

अंधविश्वास और असंतोष भी झलकते हैं। कहानीकार के भीतर जो आंतरिक पीड़ा और व्यवस्था के प्रति गहरी घृणा है, उसका सृजनात्मक विस्फोट इन कहानियों में हुआ है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि के तीन प्रमुख कहानी संग्रह हैं- सलाम, घुसपैठिए और छत्तरी। उनका प्रथम कहानी संग्रह 'सलाम' सन् 2003 में प्रकाशित हुआ। यह दलित जीवन की संवेदनशीलता और जीवन-अनुभवों की सर्वश्रेष्ठ कहानियों का संकलन है। कथाकार राजेंद्र यादव को समर्पित इस संग्रह में कुल 14 कहानियाँ शामिल हैं । इस संग्रह की प्रत्येक कहानी जातीय विशिष्टताओं के यथार्थ को प्रकट करती है । दलित जाति के लोगों केलिए इस समाज में जीना और साँस लेना आज भी चुनौतीपूर्ण है । वाल्मीकि ने इन कहानियों में समाज में व्याप्त वर्णव्यवस्था का सटीक और प्रभावी रूप से पर्दाफाश किया है । 'सलाम' कहानी की मूल संवेदना सदियों से चली आ रही सलाम जैसी प्रथा को तोड़ना है। इसमें एक दलित शिक्षित युवक हरीश के स्वाभिमान और संघर्ष को वाणी दी गई है। हरीश, सारे दुष्परिणामों के बावजूद भी, अपने विवाह के दिन सवर्णों के घर जाकर सलामी देने और बख्शीश पाने की सदियों से चली आ रही अपमानजनक परंपरा का खुलकर विरोध करता है। सलाम करने जाने से इनकार करके वह कहता है, "इस रिवाज़ को आत्मविश्वास तोड़ने की साजिश मानता हूँ।"[2] यह कहानी अम्बेडकर के जीवन-दर्शन से प्रभावित है, जिसमें रुढ़ियों और परंपराओं का नकार है। दलित अस्मिता और दलित चेतना से भरपूर यह कहानी आम दलितों को ईमानदार बने रहने की सलाह देती है। इसमें समाज से बहिष्कृत, उपेक्षित, अस्पृश्य, पददलितों की व्यथा, वेदना और पीड़ा को वाणी प्रदान कर उनकी अछूती संवेदनाओं को व्यापकता प्रदान की गई है। इसमें हरीश नामक दलित शिक्षित युवक के माध्यम से दलितों में हो रहे अस्मिता के आविष्कार, अधिकार के प्रति जागृति, कुप्रथाओं को नकारने का साहस, जातिभेद करनेवाले सवर्णों को फटकारने की वृत्ति आदि बातों का यथार्थ चित्रण प्रतिबिंबित हुआ है, जो एक सामाजिक क्रांति का द्योतक है।

'भय' मनोवैज्ञानिक धरातल पर आधारित कहानी है। दलित जाति में जन्म लेने के कारण दलित के मन में उत्पन्न हीनताबोध के विभिन्न पहलुओं पर इसमें विवेचन किया गया है। प्रत्येक व्यक्ति की तरह दलित भी समाज में समानता और सामाजिक प्रतिष्ठा चाहता है। इसके लिए वह कभी-कभी अपनी जाति को भी छिपाकर रखता है। लेकिन इससे उत्पन्न भय के कारण वह सहज रूप से अपने जीवन को चलाने में भी असमर्थ हो जाता है। यह कहानी दलितों को उनके मानवीय अधिकारों से परिचित कराने के साथ ही उनकी सोई हुई प्रतिभा में चेतना का संचार करके उन्हें अपने अस्तित्व पर सोचने के लिए मज़बूर करती है । 'गोहत्या' कहानी गाँव के परिवेश में सदियों की रुढ मानसिकता से आक्रांत सरपंचों द्वारा हो रहे दलित उत्पीड़न को निहायत अमानवीय और बर्बर संदर्भों में उजागर करती है। गाँव की पंचायती सत्ता पर सवर्ण जातियों के एकाधिकार के कारण न केवल दलितों की अभिव्यक्ति को दबाया गया, बल्कि उन्हें कठोर से कठोरतम अमानवीय यंत्रणाएँ भी झेलनी पड़ीं। इस कहानी के द्वारा वाल्मीकि ने अपने समुदाय की विभिन्न समस्याओं को उजागर करके समस्याओं का समाधान ढूँढने के साथ दलित समाज के अस्तित्व की पहचान बनाने में सहायता प्रदान की है।

'घुसपैठिए' आरक्षण की समस्या को लेकर लिखी गई एक महत्वपूर्ण कहानी है। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में प्रवेश पाने का अधिकार सवर्ण छात्र अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानते हैं। वहाँ दलितों का आना सवर्णों को अतिक्रमण लगता है। यहाँ घुसपैठिए जाति आधारित शब्द बन गया है। कोई प्रतिभाशाली दलित छात्र यदि मेडिकल कॉलेज में

प्रवेश करता है तो उसे घुसपैठ समझा जाता है। वहाँ दलित छात्रों को मानसिक यातनाओं से गुज़रना पड़ता है। "दलित छात्रों को अलग खड़ा करके अपमानित करना तो रोज़ का किस्सा है। प्रवेश परीक्षा के प्रतिशत अंक पूछकर थप्पड़ या घूँसों का प्रहार होता है। ज़रा भी विरोध किया तो लात पड़ती है। यह दो-चार दिन नहीं सालों साल चलता है ।"[3] इन मानसिक यंत्रणाओं से गुज़रते- गुज़रते वे आत्महत्या करने तक मज़बूर हो जाते हैं। आजकल उच्च शैक्षिक संस्थाओं में यह त्रासदी आम बात बन गयी है। वर्ण व्यवस्था के इस घृणित स्वरूप का पर्दाफ़ाश करके भारतीय सामाजिक व्यवस्था के प्रति अपना गहरा विद्रोह प्रकट करना इस कहानी का उद्देश्य है ।

'यह अंत नहीं है' कहानी में ओमप्रकाश वाल्मीकि ने यौन शोषण के विरुद्ध दलित लड़की बिरमा के आक्रोश और संघर्ष को वाणी दी है। सवर्ण सचींदर बिरमा को अकेला पाकर छेड़छाड़ करता है और उसकी इज़्ज़त पर हाथ डालने का प्रयास करता है। लेकिन बिरमा इसके विरुद्ध आवाज़ उठाकर अपनी अस्मिता को बचाने की कोशिश करती है। इस कहानी से यह स्पष्ट होता है कि आज की नई पीढ़ी के शिक्षित दलित युवक अपने परिवार और समाज की नारियों पर हो रहे यौन शोषण के खिलाफ़ संघर्ष करने के लिए आगे आ रहे हैं। इस कहानी का शीर्षक भी सार्थक साबित होता है, क्योंकि अंत में सभी ने मिलकर कहा था, " ना बिरमा, यह अंत नहीं है ... । तुमने हमें ताकत दी है। हार को जीत में बदलेंगे, लोगों को विश्वास जगाकर, ताकि फिर कोई बिसन मोहरा न बने।"[4] एक नयी उम्मीद के साथ कहानी का अंत होता है, सभी के चेहरों पर उम्मीद दिखायी दे रही थी।

'छतरी' ओमप्रकाश वाल्मीकि का तीसरा कहानी संग्रह है। 'छतरी' कहानी के पिता, सुगन चौधरी, अपने बच्चे को शिक्षा देने के पक्षधर हैं। कहानी में 'छतरी' को प्रतीक के रूप में चित्रित किया गया है। बच्चे के लिए छतरी बहुत मूल्यवान है। यह बारिश में किताबों को भीगने और नष्ट होने से बचाती है। यही छतरी मास्टर ईश्वरचंद्र तोड़ देते हैं। छतरी को वह बहुत आसानी से तोड़ते हैं। वास्तव में, यह छतरी तोड़ने से दलितों की सुरक्षा ही तोड़ दी जाती है। कहानी में छतरी तोड़ने के माध्यम से दलित छात्रों को शिक्षा से दूर रहने के प्रति विद्रोह है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की राय में, "प्रस्तुत कहानी संग्रह की कहानियों के माध्यम से हिन्दी जगत में चल रहे दलित विमर्श और साहित्य विमर्श के वैचारिक विचलन को भी समझने का प्रयास किया गया है । लेकिन दलित जीवन के जो अनुभव हैं, उन्हें दरकिनार करके इन विमर्शों को नहीं समझा जा सकता है । एक दलित की अनुभूतियों, अपमान, उपेक्षा, यातना और प्रताड़नाओं के संदर्भ में, जो हिन्दी साहित्य में दर्ज नहीं हुए, उन्हें रेखांकित करने का मेरा आग्रह रहा है, जिसे कयी आलोचकों ने नकरात्मकता के साथ लिया है । लेकिन मेरे लिए प्रतिबद्धता का प्रश्न है।"[5] सामजिक उत्पीड़न और अभावों के बीच के जीवन को जिस गहरी वेदना और व्यथा के साथ इन कहानियों में उघाड़ा गया है, वह कहानी के प्रभावों को गहरी चेतना के साथ सामाजिक अभिव्यक्ति की एक नई ताज़गी भी देता है।

अतः स्पष्ट है कि ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियाँ समाज में जातिवाद और भेदभाव के खिलाफ़ एक मज़बूत विद्रोह के प्रतीक हैं। उनके लेखन में दलितों के उत्पीड़न और अपमान को उजागर करते हुए सामाजिक जागृति का संदेश मिलता है। इन कहानियों के माध्यम से वे समाज को यह समझाने की कोशिश करते हैं कि समानता और न्याय केवल विचारों से नहीं, बल्कि ठोस कदमों से ही संभव हैं। ये कहानियाँ न केवल दलितों की आवाज़ को सशक्त बनाती हैं, बल्कि हमें भी अपनी भूमिका पर पुनः विचार करने के लिए

प्रेरित करती हैं।

**संदर्भ** :

1.ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र,राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, प्र.सं.2001, पृ.सं.111

2.ओमप्रकाश वाल्मीकि, सलाम, राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, प्र.सं.2000, पृ.सं.13

3.वही, पृ.सं.16

4.वही, पृ.सं.29

5.ओमप्रकाश वाल्मीकि, छतरी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं.2013, पृ.सं.10

◆ एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्षा

हिन्दी विभाग, कण्णूर विश्वविद्यालय, केरल।

मोबाइल : 8289918100

इमेल -preethamandeep@gmail.com

# राष्ट्र के पुनःनिर्माण में राजभाषा हिन्दी का स्थान

**◆डॉ. गोपकुमार जी**

गौरव की बात है कि दुनिया के प्राचीन देशों में हमारे देश 'भारत' का भी एक महत्वपूर्ण स्थान है। हमारी संस्कृति की ख्याति प्राप्त लहरों ने विश्व को जीत लिया है। विभिन्न प्रकार के वैभवों से अलंकृत हमारी संस्कृति ने चीन, अरब, यूरोपवालों के हृदय को भी अपनी खुशबू से सौरभमय बना दिया। लेकिन विदेशियों के आक्रमण से भारत छिन्न-भिन्न हो गया। राजा-सामंतों की विलासिता, धार्मिक अराजकता, यथा राजा तथा प्रजा की मानसिकता, अनैक्य, सुख-लोलुपता आदि ने हमको विदेशियों के कब्जे पर पहुँचाया। गुलामी के नरक जीवन के अन्तिम समय पर कुछ राष्ट्र नेताओं ने हिन्दी के माध्यम से देश-प्रेम की भावना जगायी। गाँधीजी, तिलक, नवरोजी, नेहरू, सरदार वल्लभभाई आदि ने सोचा कि दक्षिण से लेकर उत्तर तक, पश्चिम से पौरस्त्य तक विभिन्न जाति, धर्म, वेश-भूषा, रहन-सहन के करोड़ों लोगों के बीच हिन्दी ही एक ऐसा सूत्र है जिसकी सहायता से भारतवासियों के हृदय को पिरो-पिरोकर स्वतंत्रता-संग्रम की दहलीज़ पर इकट्ठा करें।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद हिन्दी की स्थिति अत्यन्त दयनीय बन गयी। 'हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा थी, राष्ट्रभाषा ही है, राष्ट्रभाषा बनी रहेगी'...। लेकिन विभिन्न राज्यों की ओर से निषेध का स्वर बहने लगा। सिर्फ़ महात्मा गाँधी ने हिन्दी के बल पर ज़ोर दिया। उन्होंने बताया कि 'राष्ट्रभाषा विहीन देश गूँगों के समान है'। उन्होंने एक बार बताया कि 'हिन्दुस्तानी हमारे देश की भाषा है। यह प्रांतों के आपसी व्यवहार में भी काम आती है। हमने अनेक बार घोषणा की है कि आगे भी यह इसी तरह काम आएगी। यदि यह घोषणा ईमानदारीवाली है तो हिन्दुस्तानी के ज्ञान को एक ज़रूरी चीज़ बनाने में बुराई नहीं होगी। इंग्लैंड के स्कूलों में लैटिन की पढ़ाई आवश्यक थी। उसके अभ्यास से अंग्रेज़ी के अभ्यास में कोई अड़चन नहीं पड़ती। बल्कि एक उन्नत भाषा के साथ अंग्रेज़ी में भी सुधार आया। इससे अंग्रेज़ी की सुंदरता बढ़ी। 'हिन्दी विश्वास और प्रेम की भाषा है।'

रवीन्द्रनाथ टैगोर ने एक बार कहा कि 'आधुनिक भारत की संस्कृति एक-एक दल, एक-एक प्रान्तीय भाषा और उसकी साहित्य-संस्कृति है। किसी एक को मिटा देने से कमल की शोभा ही नष्ट हो जाएगी। हम चाहते हैं कि भारत की सब प्रान्तीय बोलियाँ, जिनमें सुन्दर साहित्य-सृष्टि हुई है, अपने-अपने घर में (प्रान्त में) रानी बनकर रहे, प्रान्त के जन-गण की हार्दिक चिन्ता की प्रकाश-

भूमि स्वरूप कविता की भाषा होकर रहे और आधुनिक भाषाओं के हार की मध्य मणि हिन्दी भारत भारती होकर विराजती रहे'।

जब किसी भाषा पर चर्चा होती है तो उसका प्रयोजन भी नापा जाता है, भाषा जो भी हो वह विचार-विनिमय का माध्यम होती है। हम देख सकते हैं कि आज भाषा ने एक ऐसा स्थान प्राप्त किया है कि इसके द्वारा भी किसी देश, समाज या जाति के स्तर का मूल्यांकन होता है। भाषा उसके साहित्य का द्योतक है और सबसे बढ़कर मानव-प्रकृति का भी दर्शन कराती है। साहित्य समाज का दर्पण इसलिए तो कहा जाता है। भाषा की सुन्दर और विभिन्न शैलियों के अंकन से ही किसी उच्च कोटि का साहित्य बन जाता है, और यही तो किसी देश के स्तर को ऊँचा कर देता है। हमारे देश की यह विशेषता है कि उसके प्रत्येक राज्य की अपनी-अपनी भाषा है और हिन्दी भाषा को विशेष स्थान एवं सम्मान दिया जाता है। हिन्दी भारत के अनेक प्रान्तों में बोली जाती है। हिन्दी की यह विशेषता है कि वह जैसे बोली जाती है वैसे ही लिखी जाती है। हाँ, हिन्दी को भारत की राष्ट्रभाषा तथा संपर्क भाषा के रूप में स्वीकार किया गया है। राजभाषा के रूप में हिन्दी का प्रचार व प्रसार आजकल चर्चा का मुख्य विषय बन रहा है। केन्द्र सरकार के कार्यालयों, उपक्रमों, निगमों तथा राष्ट्रीयकृत बैंकों में हिन्दीकरण की प्रवृत्ति विभिन्न कार्यक्रमों के ज़रिये बढ़ रही है।

राजभाषा नीति[1] के बारे में सभी जानते ही होंगे। विदेशी भाषा अंग्रेज़ी की जगह स्वदेशी भाषा हिन्दी को प्रतिस्थापित करना राजभाषा नीति का उद्देश्य है। भारत के संविधान में इसकी व्यवस्था की गयी है। राजभाषा अधिनियम उन्नीस सौ तिरसठ तथा राजभाषा नियम[2] उन्नीस सौ छिहत्तर इस व्यवस्था को कार्यरूप देने के लिए बनाये गये। कार्यालयों में अधिकरियों और कर्मचारियों को राजभाषा हिन्दी का प्रशिक्षण देने की भी व्यवस्था की गयी है। इस कार्यालय में भी एक प्रशिक्षण केन्द्र है।

सरकारी कार्यालयों में व्यवहार के लिए विशेष शब्दों का प्रयोग किया जाता है। ये शब्द पारिभाषिक बन जाते हैं, अर्थात् विशेष विषय के बोधक बन जाते हैं। पारिभाषिक शब्दों के निर्माण के सम्बन्ध में विद्वानों के अनेक मत हैं। कई विद्वान भारत एवं विश्व की सबसे प्राचीन भाषा संस्कृत के धातुरूपों से ही नये-नये शब्द बनाना चाहते हैं। विद्यालय, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय, कार्यालय, निदेशालय, अधीक्षक आदि शब्द इसी भाँति के हैं। इन शब्दों की निर्माण-प्रवृत्ति को विचारक विद्वान राष्ट्रीयतावादी कहते हैं। इस राष्ट्रीय प्रवृत्ति के विरुद्ध लोगों का कहना है कि संस्कृत धातुओं के बल पर बनाये जानेवाले शब्द कठिन होते हैं। सरल शब्द तो किसी भी भाषा से लिये जा सकते हैं। विज्ञान के शब्द चाहे अंग्रेज़ी भाषा के हों या किसी अन्य भाषा के हों, यदि वे शब्द विश्वभर के विज्ञान-क्षेत्र में प्रसिद्ध हैं तो उनके लिए नये शब्द बनाने की आवश्यकता नहीं है, जैसे-थर्मामीटर। इसलिए 'ताप-मापक यंत्र' शब्द प्रयोग करने की आवश्यकता नहीं लगती है। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में प्रयुक्त होनेवाले शब्दों से अपनी भाषा को भी समृद्ध करना चाहिए।

इस दृष्टि को विद्वान अन्तर्राष्ट्रीयतावादी प्रवृत्ति मानते हैं। सभी शब्द तो दूसरी भाषाओं से लिये नहीं जा सकते हैं। अपनी हिन्दी भाषा में उन शब्दों को भले ही ले लिया जाए जो सामान्य जनता तक पहुँच चुके हैं अथवा विशेष विद्याओं में प्रयुक्त होते हैं। चिकित्सा एवं विज्ञान की सभी शाखाओं में ऐसे शब्दों का व्यवहार उपयोगी सिद्ध नहीं होता है। जैसेः- मीटर, बम, राडार, रेडियो, मशीन आदि शब्द। भारत सरकार के वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दवाली आयोग ने ऐसे शब्दों को हिन्दी भाषा में प्रयुक्त करने का निर्णय लिया है, जो शब्द विश्व-भर की प्रसिद्ध भाषाओं में प्रचलित हैं। जैसे-रेलवे स्टेशन, लाइसेंस, टेलीफोन, रायलटी, थर्मामीटर आदि। इसके अतिरिक्त वे शब्द भी हैं, जो किसी व्यक्ति विशेष के कारण विश्व- भर में प्रसिद्ध हो गये

हैं, जैसे-लेनिनवादी, मार्क्सवादी, ब्रेल आदि। लोक में प्रचलित हो जानेवाले शब्दों को भी भाषा में स्थान मिल जाता है। गुरु नानक देव के सभी पद 'गुरुवाणी' के नाम से प्रसिद्ध हैं। ऐसे ही डबल रोटी, गाँधी पार्क, नेताजी मार्ग आदि शब्द हैं। चिड़ियाघर, जच्चाघर (प्रसूतिगृह) बच्चाघर, अस्पताल आदि ऐसे लोक-प्रचलित शब्द हैं, जिन्हें सामान्य जनता आसानी से समझती है। वे तकनीकी होते हुए भी लोक- प्रचलित होते हैं।

'ऑपरेशन' शब्द सभी लोग समझते हैं। ऐसे ही कुछ दूसरे शब्द भी लोक-प्रचलित हैं। इसलिए शब्दों के निर्माण में समन्वयवादी उदार दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। ठीक-ठीक संगत अर्थ देनेवाले अकेले एक या दो शब्दों से बननेवाले शब्दों को अपना लेना चाहिए। कई अंग्रेज़ी शब्दों के लिए स्वदेशी भाषाओं के दो-दो शब्द मिल जाते हैं। उन्हें भी सुविधा से प्रयोग कर लेना चाहिए। जैसे- Agreement form के लिए 'करारनामा' और 'अनुबन्ध पत्र' शब्द प्रचालित हैं। Admission के लिए 'दाखिला' या 'प्रवेश' शब्द भी प्रसिद्ध हैं। ऐसे शब्दों का बिना हिचक के प्रयोग करना चाहिए।

प्रधान महालेखाकार कार्यालय, महालेखाकार कार्यालय एवं हकदारी कार्यालय केरल राज्य सरकार के व्यवहारों पर लेखाकरण तथा लेखापरीक्षा का कार्य कर रहे हैं। राजभाषा हिन्दी के कार्यान्वयन के उद्देश से यहाँ का काम हिन्दी में करने की कोशिश की जा रही है। वर्षों से अंग्रेज़ी भाषा सरकारी कामकाज का माध्यम बने रहने के कारण परिवर्तन के लिए अनुवाद का सहारा लेना आवश्यक हो गया है। इसके लिए इस विभाग में विशेष रूप में प्रयुक्त शब्दों तथा वाक्यों का हिन्दी में अनुवाद कर उसका प्रयोग करने की कोशिश की जा रही है। आशा है कि यह कोशिश सफल हो जाएगी।

**संदर्भ**


1. राजभाषा नीति , 18 जनवरी 1968।
2. राजभाषा नियम, 28 जून 1976।



◆सह आचार्य
सरकारी बी जे एम कॉलेज
चवरा, केरल।


# थर्ड जेंडर समुदाय के संघर्ष और व्यथा का यथार्थ : महेंद्र भीष्म कृत 'किन्नर कथा' के विशेष संदर्भ में

**◆डॉ.अमृता सिंह**



**सारांश:** वर्तमान समय में भी शारीरिक भिन्नताओं के कारण तृतीय लिंगी समुदाय संघर्षरत है। उन्हें समाज में ऐसे दोष की सज़ा दी जा रही है, जिसमें उनकी कोई भूमिका नहीं है। जहाँ व्यवस्था उन्हें शिक्षा, रोज़गार, आवास जैसी मूलभूत आवश्यकताएँ प्रदान करने में असफल रही है, वहीं सामाजिक भेद-भाव के कारण वे सामाजिक स्वीकार्यता पाने में भी विफल रहे हैं। किन्नर समुदाय सामाजिक समस्याओं से जूझता हुआ आज भी अपने अस्तित्व व अधिकारों के लिए संघर्षरत है।तृतीय लिंगी समुदाय की केवल इतनी-सी माँग है कि उन्हें भी समाज की मुख्यधारा से जोड़ा जाए, ताकि वे भी अपनी कुशाग्र बुद्धि तथा योग्यताओं द्वारा समाज व देश के विकास में अपना योगदान सुनिश्चित कर सकें। इस आलेख में महेंद्र भीष्म कृत 'किन्नर कथा' के विभिन्न आयामों व सन्दर्भों को विवेचित-विश्लेषित करने का प्रयास किया जाएगा।

**बीज शब्द:** थर्ड जेंडर, संघर्षरत, सामाजिक समस्या, अस्तित्व।

स्त्री तथा पुरुष नामक दो स्तम्भों पर खड़ा हमारा समाज अक्सर यह भूल जाता है कि इस समाज में एक अन्य वर्ग का भी अस्तित्व है, जिसे 'किन्नर' नाम से संबोधित किया जाता है। इन्हें न तो पुरुष और न ही स्त्री की श्रेणी में परखा जाता है, बल्कि उपेक्षित मानकर इनका उपहास और अपमान किया जाता है। सामाजिक अस्वीकार्यता के साथ-साथ परिवार द्वारा ठुकरा तथा त्याग दिए जाने के कारण यह समुदाय अत्यंत दयनीय जीवन व्यतीत करने के लिए विवश है। 'अधूरी देह' से ली गईं हृदय को भेद देनेवाली ये पंक्तियाँ -

"नहीं नारी हूँ मैं और नर नहीं हूँ,
विवश हूँ, मूक हूँ, पत्थर नहीं हूँ,
जिसे मौका मिला उसने सताया,
सभी ने रक्त के आँसू रुलाया" [1]

इस समुदाय की पीड़ा को व्यक्त करती हैं, जो समाज में अपने अस्तित्व के लिए हर कदम पर संघर्षरत है। समाज द्वारा घृणित दृष्टि से देखे जानेवाले इस समुदाय को कई नामों, जैसे- 'हिजड़ा', 'खुसरा', 'छक्का', 'तृतीयलिंगी', 'उभयलिंगी', 'ख्वाजसरा', 'थर्ड जेंडर', 'ट्रांसजेंडर', 'मेहला', 'ट्रांससेक्सुअल', 'कोती', 'आरवणी', 'तिरुननगाई', 'कोचावाडू', 'पावैया', आदि नामों से अभिहित किया जाता है। माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए एक फैसले में उपरोक्त नामों की अपेक्षा इन्हें 'थर्ड जेंडर' नाम से संबोधित करने को कहा गया है।

पौराणिक तथा ऐतिहासिक आख्यानों में इस समुदाय का उल्लेख मिलता है। रामायण और महाभारत काल में इनकी उपस्थिति अनेक अंतर्कथाओं द्वारा प्रचलित है। रामायण की प्रचलित कथानुसार श्रीराम ने चौदह वर्षों से चित्रकूट में निश्छल और निस्वार्थ भाव से अपनी प्रतीक्षा करते किन्नरों को वरदान दिया कि उनका दिया आशीर्वाद कभी निष्फल नहीं होगा। महाभारत में शिखंडी, भीष्म पितामह के वध का कारण बना, तो वहीं अर्जुन ने अज्ञातवास का अंतिम वर्ष 'बृहन्नला' नामक किन्नर का वेष धारणकर व्यतीत किया। हिन्दू तथा मुगल शासनकाल में किन्नर समुदाय को विशिष्ट स्थान प्राप्त था। वे राजनीति में कुशल सलाहकार, प्रशासक, अंतः पुर तथा हरम में संरक्षक के पद पर नियुक्त थे। अलाउद्दीन खिलजी के शासनकाल में किन्नर वरिष्ठ सैनिक अधिकारी व कुछ अन्य प्रमुख पदों पर कार्यरत थे। खिलजी ने मलिक गफ़ूर की सहायता से दक्षिण भारत में अपने साम्राज्य का विस्तार किया। इतिबार खान, बाबर के विश्वसनीय सेवक को राजसी महिलाओं की सुरक्षा का दायित्व दिया गया था, जिन्हें बाद में अकबर के शासनकाल के दौरान दिल्ली का राज्यपाल बनाया गया। वहीं जहांगीर ने ख्वाजसरा हिलाल को प्रशासनिक अधिकारी तथा इफितखार खान को जागीर के फौजदार के प्रमुख पद पर आसन्न किया। इसी प्रकार ख्वाजा आगह कई बार आगरा फ़ौजदार के पद पर नियुक्त हुए। राजकुमार मुराद बख्श के ख्वाजासरा ने तो अपने शासक के लिए अपने प्राणों की आहुति तक दे दी। संस्कृत नाटकों और कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में किन्नरों को राजसी सेवक के रूप में बतलाया है। वह समुदाय जो समाज में विशिष्ट स्थान रखता था, ब्रिटिश राज में संदेह की दृष्टि से देखा जाने लगा तथा 1871 में इस वर्ग को आपराधिक जनजाति में सम्मिलित कर दिया गया। स्वतंत्रता के पश्चात भी इनकी यथास्थिति में कोई अंतर नहीं आया।

यौनिक भिन्नता के कारण यह समुदाय समाज की मुख्यधारा में सम्मिलित होने में असमर्थ रहा, वहीं समाज की सोच भी सदैव इनके प्रति परंपरागत तथा रूढ़िगत ही रही, जिसके कारण इन्हें नकारात्मक और हेय दृष्टि से देखा जाता है। संकीर्ण विचारों से घिरा हमारा समाज एक ओर इन्हें नागरिक अधिकारों से वंचित रखते हुए परिवार से लेकर किसी भी कार्यक्षेत्र में कार्य करने से रोकता है, वहीं दूसरी ओर यह समाज शादी-ब्याह और जन्मोत्सव जैसे मांगलिक कार्यों पर इनकी शुभकामनाएँ तथा आशीर्वाद पाने को सौभाग्य की बात मानता है। यह हमारे तथाकथित सभ्य कहलाए जानेवाले समाज के दोगलेपन और

स्वार्थ को दर्शाता है। मुख्यधारा में शामिल न हो पाने के कारण बधाई देकर उपहार में मिले पैसों से अपनी जीविका चलानेवाला किन्नर समाज वर्तमान समय में सामाजिक तथा आर्थिक विषमता के कारण भीख माँगने और वेश्यावृति जैसे घिनौने कार्य करने को अभिशप्त व विवश हैं। इस संदर्भ में लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी कहती हैं "हिजड़ों के पास बुद्धि नहीं होती ? उनके पास प्रतिभा नहीं होती ? बल नहीं होता ? वह राजनीति में नहीं जा सकते ? फौज में नहीं जा सकते ? इन बातों को किन तर्कों के आधार पर तय किया ? आप ने कलाकारों, प्रतिभावानों को मजबूर कर दिया पचास-पचास रुपए में देह बेचने को, ताली बजाने को।"[2]

किन्नर समुदाय सामाजिक समस्याओं से जूझता हुआ आज भी अपने अस्तित्व व अधिकारों के लिए संघर्षरत है। समाज द्वारा बहिष्कृत, लिंग निरपेक्ष समुदाय पर वर्तमान समय में अन्य उपेक्षित वर्गों की भाँति साहित्य द्वारा चिंतन और विमर्श हो रहा है। हिन्दी साहित्य में इस विषय पर रची गई रचनाओं में किन्नर समाज के संघर्षरत जीवन की व्यथा-कथा का अत्यंत ही मार्मिक ढंग से चित्रण किया गया है। हिन्दी साहित्य में उभयलिंगी समाज पर कई साहित्यकारों ने लेखनी चलाकर इस समुदाय के संघर्ष और पीड़ा को वाणी दी। इस सूची में यमदीप (नीरजा माधव), किन्नर कथा, मैं पायल (महेंद्र भीष्म), तीसरी ताली (प्रदीप सौरभ), गुलाम मंडी (निर्मला भुराड़िया ), पोस्ट बाक्स न. 203 नाला सोपारा (चित्रा मुद्गल), ज़िंदगी 50-50 (भगवत अनमोल) आदि उपन्यास उल्लेखनीय हैं।

तृतीय लिंगी समुदाय की केवल इतनी-सी माँग है कि उन्हें भी समाज की मुख्यधारा से जोड़ा जाए, ताकि वे भी अपनी कुशाग्र बुद्धि तथा योग्यताओं द्वारा समाज व देश के विकास में अपना योगदान सुनिश्चित कर सकें। वर्तमान समय में भी वस्तुस्थिति यह है कि इन्हें तिरस्कृत कर, अवांछित, वर्जित महसूस करवा यह अहसास दिलवाया जाता है कि समाज के लिए यह समुदाय अस्तित्वहीन है। सामाजिक बहिष्करण, भर्त्सना, हीन भावना ने इस वर्ग को हाशिए का जीवन व्यतीत करने पर विवश कर दिया है।लेखक महेंद्र भीष्म के कथनानुसार "आखिर ईश्वर ने उसके साथ अन्याय क्यों किया ? क्यों हम उन्हें अपने से दूर, सामाजिक दायरे से बाहर हाशिए पर रखते चले आ रहे हैं ? उनके प्रति हमारी सोच में अश्लीलता का चश्मा क्यों चढ़ा रहता है ? किसी किन्नर के साथ बेहिचक घूमने, टहलने या उसे अपने ड्रॉइंगरूम में बैठाकर उसके साथ जलपान करने से हम क्यों हिचकते हैं, क्यों ? इस पर विचार करना होगा, उन्हें अपने साथ समाज की मुख्यधारा से जोड़ना होगा, उनका पूरा मान-सम्मान करना होगा। उनके अनुसार उनके अनुरूप उन्हें रोज़गार प्रदान कराने होंगे। वे भी हमारी तरह अपनी माँ की कोख से जन्मे अपने पिता की संतान हैं, वे ज़्यादा नहीं माँग रहे, 'हमें हिजड़ा नहीं, इंसान समझा जाए।"[3]तृतीय लिंगी समुदाय की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक पक्ष को उजागर करता उपन्यास *किन्नर कथा* इस वर्ग की समस्याओं और जीवन पर विस्तृत प्रकाश डालता है। समाज में थर्ड जेंडर की स्थिति, उनकी यथार्थ परिस्थितियों, मान्यताओं, रीति-रिवाज़ों, जीवन के सिद्धांतों आदि को महेंद्र भीष्म ने बड़े ही अनूठे ढंग से वर्णित किया है।

समाज में बच्चे के जन्म पर खुशियाँ मनाई जाती हैं, परंतु जब यही बच्चा सामान्य स्त्री या पुरुष योनि का न होकर तृतीय लिंग या जिसे आम सामाजिक भाषा में कहें कि किन्नर हो तो अकसर परिवारवाले उसे अपनाने में हिचकिचाते हैं। परिवार में जन्मे उस बच्चे को कुटुंब के नाम पर कलंक मान उसे त्यागकर उससे अपना पीछा छुड़वाना ही वे अपना सर्वप्रथम दायित्व समझते हैं। राजकुवरि सोना देवी सिंह उर्फ चन्दा तथा तारा चंद्र अग्रवाल उर्फ किन्नरों की गुरुमाई ऐसे ही पात्र हैं जिन्हें उनकी लैंगिक भिन्नता के कारण परिवार द्वारा ठुकराकर उनका परित्याग कर दिया गया है। राजा जगतराज सिंह (जैतपुर रियासत के रह चुके राजा) और रानी आभासिंह की जुड़वा संतानों में से एक का किन्नर होने का पता चलते ही दायजू सरकार (राजा जगतराज सिंह) पर एक-एक पल इतना भारी पड़ जाता है कि जिस बच्ची पर वे

अपनी जान छिड़कते थे, वह उन्हें राजवंशी परिवार के नाम, मान-मर्यादा पर कलंक प्रतीत होने लगती है। उन्हें बच्चे से अधिक अपना स्वाभिमान, बुंदेला वंश की इज़्ज़त प्यारी थी जिसके चलते वे समाज में अपनी साख बचाने हेतु दीवान पंचन सिंह उर्फ दद्दा को उसे काल के गाल उतारने का आदेश देते हैं। "अपनी इस किन्नर संतान का पता लगते ही एक-एक पल भारी पड़ा डायजू को। मुझे इस बच्ची को समाप्त कर देने का हुक्म मिला है।"[4] उस समय उनके मन में पुत्री सोना के लिए मोह या बियोग की पीड़ा लेश मात्र नहीं रहती।

पंचम सिंह राजा की लोकमर्यादा की रक्षा हेतु उनकी आज्ञा का पालन करते हुए निरंजना नामक दाई को मौत के घाट तो उतार देते हैं ताकि राजघराने का रहस्य, जग ज़ाहिर न हो, किन्तु वह उस नन्हीं सी बच्ची के प्राण नहीं ले पाते और उसे अंततः किन्नरों की गुरुमाई तारा को पालन-पोषण हेतु सौंप देते हैं। किन्नर समाज में पूर्ण रूप से सम्मिलित होने पर सोना का नाम *चन्दा* रखा जाता है। तारा, चन्दा की पूरी ज़िम्मेदरी मातिन (परिवार द्वारा शोषित विधवा जो डेरे में रहती है) को सौंपती है। नृत्य कला में पारंगत चन्दा को मातिन कई अन्य गुण भी सिखाती है। कोई भी अपूर्व सुंदरी चन्दा के किन्नर रूप से तब तक परिचित नहीं हो पाता था जब तक बताया न जाए। डेरे के अन्य किन्नरों की भाँति चन्दा जीविकोपार्जन के लिए किसी भी समारोह में नहीं जाती थी, बल्कि मातिन के साथ डेरे में रहकर वह सब कार्य करती, जो एक आम लड़की अपने घर पर करती है।चन्दा को सम्पूर्ण स्त्री के रूप में देखने की इच्छुक तारा उसका ऑपरेशन करवा, उसके लिए एक अच्छा वर देख, उसका विवाह करवाने का स्वप्न सँजोती है। तारा के इस सपने को तब पंख लग जाते हैं जब वह मनीष और चन्दा को एक-दूसरे के मन में घर करते देखती है। दोनों ही मौन रूप सेएक-दूसरे को पसंद करने और चाहने लगते हैं। चन्दा के प्रेम में डूबे मनीष का डेरे में जाना जहाँ परिवारवालों को अखरने लगा वहीं समाज के लिए यह उपहास का विषय बनता जा रहा था। लोग "हिजड़ों की टोली में हिजड़ा बन जाने की बात कर व्यंग्य-बाण उसपर छोड़ते।"[5] किन्तु मनीष पर व्यंग्य भरी बातों का, तानों-उलहानों का कोई असर न होता। चन्दा के संग हुए ईश्वरीय अन्याय और इसके कारण उसके अंदर पनप रही उस पीड़ा तथा टीस को वह गहराई से महसूस करता है। चन्दा का स्त्री न होकर एक किन्नर होना कभी उसे विचलित नहीं करता था, बल्कि मनीष तो सदा उसे सम्पूर्ण स्त्री होने का अहसास करवाता और उसे अपनाना चाहता है, किन्तु उसकी इस पहल में समाज आड़े आता है क्योंकि लोगों को यह कतई मंजूर नहीं कि कोई किसी हिजड़े को अपना जीवन साथी बनाए।

गुरुमाई तारा, महाराज छतरपुर के कहने पर उनके भाँजे कुँवर विजेन्द्र सिंह की वरेच्छा के कार्यक्रम पर बुंदेलखंड के प्रसिद्ध राई नृत्य को चन्दा द्वारा प्रस्तुत करवाती है। चन्दा के नृत्य से प्रसन्न होकर कन्या पक्ष अर्थात् महाराज जगत सिंह बुंदेला उन्हें अपनी पुत्री राजकुंवरी रूपा के विवाह में नृत्य प्रस्तुत करने जैतपुर रियासत आने का निमंत्रण देते हैं। यह जानकर कि चन्दा ने अपने पिता और परिवार के समक्ष राई नृत्य प्रस्तुत किया है गुरुमाई सन्न रह जाती है। वहीं कुछ माह पश्चात गुरुमाई की हत्या के बाद इस सत्य से अनभिज्ञ सोनिया, चन्दा तथा अन्य किन्नरों को लेकर गढ़ी पहुँचती है। गढ़ी में प्रवेश कर चन्दा को अपने बचपन की स्मृतियाँ स्मरण हो आती हैं। स्वयं की स्थिति पर अफसोस करना व अपने आप को कोसते हुए यह सोचना कि माता-पिता, भाई-बहन, राजसी ठाठ-बाट होते हुए भी उसका घर-परिवार से दूर शापित जीवन व्यतीत करना कितना दुर्भाग्यपूर्ण है। यथा "माता-पिता, भाई-बहन, राजसी ठाठ-बाट होते हुए भी वह उसी नगर में अलग-थलग इस पुरानी पाठशाला के फर्श पर बिछे किराये के गद्दे पर लेटी अपने दुर्भाग्य के साथ समझौता किए पड़ी थी। केवल इसलिए कि वह किन्नर पैदा हुई थी।"[6] अपने परिवार को पूर्ण रूप से पहचानने के बाद चन्दा इतनी आहत हो जाती है कि मन-ही-मन वह यह संकल्प करती है-"वह आज रात इतना नाचेगी, इतना नाचेगी कि आज की रात उसके जीवन की

अंतिम रात हो। बाबुल के इस आँगन से जहाँ उसकी हमजाई बहन रूपा की डोली उठेगी, वहीं से उसकी अर्थी उठे।"[7] अपने इसी संकल्प को पूरा करने के लिए वह समारोह में इतना नाचती है कि अंततः थककर चूर हो मूर्छित हो गिर पड़ती है। वहीं अपनी पुत्री को समारोह में सारे समाज के समक्ष एक मामूली-सी नर्तकी के रूप में नृत्य करती देख, माँ का मन और आत्मा तड़प उठती है। बेसुध चन्दा को उपचार हेतु महारानी आभा (माँ) अपने कक्ष में ले जाती हैं और दद्दा को बुलवा चन्दा यानि सोना की मृत्यु से संबंधित सत्य को उन्हीं के मुँह से उगलवाती है, जिसे एकाएक वहाँ आए डायजू सरकार सुनकर स्वयं को ठगा सा महसूस करते हैं। दद्दा द्वारा की गई आज्ञा उल्लंघन दायजू सरकार को इतना क्रोधित कर देती है कि वह उन्हें विश्वासघाती कह उनपर रिवाल्वर तान लेते हैं और वहीं सोना (चन्दा) को पुनः अपनाने से इनकार कर उसे अपशब्द कह, पिता और बहन का घर और सुख-चैन बर्बाद करने का लांछन लगा, अपमानित कर वहाँ से चले जाने को कह देते हैं। गढ़ी से लौट आई चन्दा एक बार पुनः जैतपुर जाने की ज़िद्द करती हुई अंततः अपने पिता के समक्ष प्रकट हो जाती है। अपनी हिजड़ा संतान को दोबारा अपने सामने खड़े देख जगतराज क्रोध से आग-बबूला हो उसपर बंदूक तान लेते हैं। तिरस्कृत, बहिष्कृत, उपेक्षित, शापित जीवन जी रही चन्दा पिता के हाथों मरने को तैयार हो उनकी ओर बढ़ती जाती है कि तभी कुँवर उसपर गोली चला देता है। चन्दा से अपने संबंध से अनजान कुँवर का केवल पिता का उसके प्रति क्रोध और घृणा देखकर ऐसा कदम उठाना हमारे तथा कथित सभ्य कहलाए जाने वाले समाज का प्रतिनिधित्व करता है जहाँ सदियों से बनाए गए इस आचरण को बिना सोचे-समझे सभी अपनाते चले जा रहे हैं। कोई भी व्यक्ति एक क्षण के लिए भी कभी भी इनके दर्द, पीड़ा को नहीं समझता। समाज तो इन्हें इंसान भी नहीं समझता, इसलिए तो अकसर ये केवल इतना ही कहते हैं कि "लोग हमें हिजड़ा नहीं इनसान समझें।"[8]

प्रत्येक किन्नर का अपना एक संघर्षरत अतीत होता है। परिवार से अलग होकर रहने का दंश उन्हें जीवन भर झेलना पड़ता है। तारा भी इन सबसे अलग न थी। उसे भी अपने परिवार से बिछड़ने का दंश भुगतना पड़ा था। माता-पिता की आँखों का तारा व दुलारा, पाँच भाई-बहनों में सबसे छोटा ताराचन्द बढ़ती उम्र के साथ-साथ शर्मीला होता जा रहा था। उसे लड़कों के साथ की अपेक्षा लड़कियों का संग भाता था। लड़कियों जैसे हाव-भाववाले स्वभाव के कारण वह सबके हास-परिहास, उपहास का केंद्र बनता जा रहा था। तारा के किन्नर होने की पुष्टि होने पर माता-पिता तो उसे छिपाकर अपने पास ही रखना चाहते थे, परंतु उसकी असहनीय वास्तविकता से खिन्न हो चुका बड़ा भाई खीज और घृणा के चलते उसे घर-परिवार से दूर कर देता है। घर-परिवार से कटकर ताराचंद अंततः किन्नर समाज में सम्मिलित हो जाता है, जहाँ से लौटकर वापस आना संभव न था। स्वजनों की घृणा का पात्र बन चुके तारा को स्वर्गवासी माता-पिता के अंतिम दर्शन करने से भी वंचित कर दिया जाता है जिसकी पीड़ा आजीवन उसे सालती रहती है।

कालांतर में ताराचंद, किन्नर समाज की गुरुमाई तारा के रूप में अपने समाज का कार्यभार संभालती है। तारा परिवार द्वारा शोषित विधवा कुसमावती (मातिन) की रक्षा कर, उसे अपने डेरे में रखने के लिए जुरमाना भर, अपने समाज से आज्ञा ले उसे अपने यहाँ आश्रय देती है। वह दो किन्नरों का लिंग परिवर्तन करवा उन्हें स्त्री रूप प्रदान कर, उनका विवाह करवा, उन्हें सामान्य जीवन व्यतीत करने का मौका प्रदान करती है। इतना ही नहीं जैतपुर रियासत के दीवान को दिया गया वचन वह पूरी निष्ठा से निभाती है। मातिन की देख-रेख में पल रही चन्दा (रूपा) को भी वह अन्य दो किन्नरों की भाँति पूर्ण स्त्री रूप प्रदान करवा सुखी विवाहित जीवन व्यतीत करते हुए देखना चाहती है। औरों की पीड़ा को भली-भाँति समझनेवाली तारा गुरुमाई की पीड़ा अपना ही परिवार कभी नहीं समझ पाता। पहले भाई और फिर भतीजा जब-तब मौका मिलते ही उसे अपमानित कर देता है। चन्दा के प्रति

आकर्षित तथा फिर उसके प्रेम में पड़ चुके मनीष का बार-बार उनके डेरे में जाने की वजह से जग-हँसाई का पात्र बन चुके अपने परिवार का कारण भी उसका बड़ा भतीजा तारा को ही ठहराता है। संघर्षरत जीवन तथा सदा दूसरों का भला सोचने और करनेवाली तारा की अंततः हत्या कर दी जाती है। लेखक के कथनानुसार "व्यक्ति अपने स्वभाव, आचरण व कर्म से ही पहचाना जाता है और इस तरह वह लोगों के बीच अपनी अलग पहचान बनाने में सफ़ल रहता है।"[9] यह कथन तारा के लिए प्रयोग में लाया जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

किन्नर समुदाय शादी-ब्याह, मुंडन, समारोह आदि में बधाई गा, नृत्य प्रस्तुत कर अपनी आजीविका चलाते हैं, किन्तु इस सब में भी अब उन्हें कई समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। यह समुदाय सामाजिक शोषण तो झेलता ही है, वहीं नकली किन्नरों द्वारा बनाए गए वातावरण, उनकी लोगों के साथ की जाने वाली मार-पीट, गाली-गलौच, अभद्रता तथा पैसे उगाहने के लक्ष्य के कारण अच्छा-बुरा हर प्रकार का कार्य करना आदि कारणों ने समाज में इनकी प्रतिष्ठा को और अधिक भंग कर दिया है। नकली किन्नरों के कारण ही समाज में पहले से ही अवांछित माने जानेवाले इस समुदाय को असामाजिक तथा अराजक तत्व समझ जाने लगा है। इनकी वजह से समाज का वह हिस्सा जो गाहे-बगाहे इनकी ओर झुक भी जाता था, वह भी इनसे खिंचा-खिंचा रहने लगा है। नकली किन्नरों का लोगों की भावनाओं से खिलवाड़ करना, उनके साथ अभद्र तथा अशोभनीय व्यवहार, न्योछावर के नाम पर बलात् धन को वसूल करने के कारण तारा जैसे वास्तविक किन्नरों का जीवन व्यतीत करना दूभर होता जा रहा था। उनके लिए असली और नकली के चलते अपने अस्तित्व को बचाए रखना चिंता का विषय था, जिसके लिए वे ज़िला अधिकारी से मिलकर अपनी समस्या उनके समक्ष रखते भी हैं। ज़िला अधिकारी के समक्ष भी तारा का यह कहना "हमें 'हिजड़ा' न पुकारा जाए, आखिर हम सब भी तो इंसान हैं। हमारे भी नाम हैं, हमें स्त्री या अन्य या उभरा हुआ लिंग समझा जाए, हमें हमारे नामों से पुकारा जाए। समूह के तौर पर हमें हिजड़ा की जगह 'किन्नर' सम्बोधन दिया जाए।"[10] उनकी पीड़ा को दर्शाता है।

बेरोज़गारी और निर्धनता के कारण लंबू नामक व्यक्ति जो अपने स्तैण स्वभाववश डेरे में आता था, तारा की टोली में ढोलक बजाने का काम करता था। किन्नरों की दिन भर की कमाई देखकर उसके मन में लालच उत्पन्न होता है, जिसके चलते वह तारा से आज्ञा लेकर स्वेच्छा से किन्नर रूप धारण करता है। लंबू और उसके कुछ साथी धीरे-धीरे अपना अलग डेरा स्थापित कर असली गुरुमाई तारा को नज़रअंदाज़ कर उनकी कमाई पर हक जमाने लगते हैं। नौबत तो यहाँ तक आ जाती है कि असली किन्नरों को स्वयं की वास्तविकता भी प्रमाणित करने के लिए सफाई देनी पड़ जाती थी। इस असली-नकली तथा लंबू का किन्नरों का स्वांग दर कमाई करने की लालसा उससे तारा की हत्या करवा देती है। तारा जैसे जन्मजात किन्नर समुदाय की चिंता यही है कि यदि 'मर्द' किन्नर बनकर स्वांग रचकर यूँ ही कमाई करते रहे तो असली किन्नरों के समक्ष भूखों मरने जैसी स्थिति उत्पन्न हो जाएगी।

**निष्कर्ष:** लेखक महेंद्र भीष्म ने आलोच्य उपन्यास के माध्यम से किन्नर होने की पीड़ा, व्यथा और संघर्ष को उभारा है। परिवार से विस्थापित होकर रहने का दंश आजीवन उन्हें तड़पाता है। प्रत्येक किन्नर की अपनी एक कहानी है जिसमें व्याप्त शोषण, तिरस्कार, घृणा, उपेक्षा, संघर्ष, जिजीविषा के लिए जूझना तथा अपने अस्तित्व के लिए लड़ना सम्मिलित हैं। किन्नर रूप में जन्मे प्रत्येक व्यक्ति का समाज से केवल एक ही प्रश्न है कि किन्नर रूप में जन्म लेने का दण्ड समाज उन्हें क्यों देता है जबकि इसमें उनका तो कोई दोष नहीं। फिर समाज की दृष्टि में वे अपराधी क्यों? क्यों उन्हें ही सामाजिक तौर पर अराजक और असामाजिक तत्व समझा जाता है? क्यों वे उपेक्षित व अपमानित किए जाते हैं? क्या समाज कभी उन्हें स्वीकार करेगा, क्योंकि किसी भी सभ्य समाज के लिए यह एक ऐसा प्रश्न है जिसका उत्तर देना उसके लिए कहीं-न-कहीं अभी भी कठिन है। किन्नरों की स्वीकार्यता समाज के लिए महत्वपूर्ण प्रश्न है, जिसका समाधान समाज में रहनेवाले हर व्यक्ति को उनका समर्थन कर, उन्हें मान-सम्मान दे, उन्हें स्त्री-पुरुष की श्रेणी में न लाते हुए केवल मनुष्य समझकर देना होगा। अतः यह कहा

जा सकता है कि 'किन्नर कथा' उपन्यास द्वारा लेखक पाठक वर्ग की संवेदना को झंझोड़ने में सफ़ल हुए हैं।

**संदर्भ सूची –**


1. सिंह विजेन्द्र प्रताप, रवि कुमार गौड़, भारतीय साहित्य एवं समाज में तृतीय लिंगी विमर्श, अमन प्रकाशन, कानपुर, 2016, पृ .11
2. मासीवाल भावना, थर्ड जेन्डर और हिन्दी उपन्यास, संपादक- डॉ.एम.फीरोज़ खान, थर्ड जेन्डर और साहित्य, विकास प्रकाशन, कानपुर, 2018, पृ .38
3. भीष्म महीन्द्र, किन्नर कथा, सामयिक बुक्स, नयी दिल्ली, 2018, पृ .7- 8
4. वही, पृ.39
5. वही, पृ.72
6. वही, पृ.165
7. वही, पृ.170
8. वही, पृ.67
9. वही, पृ.95
10. वही, पृ.94



◆हिन्दी विभाग
कश्मीर विश्वविद्यालय
श्रीनगर, कश्मीर।


# वैष्णव संत मध्वाचार्य


**◆डॉ.षीबा शरत एस**

सगुण भक्ति काव्य परंपरा में "द्वैतवाद" के प्रवर्तक श्रीमध्वाचार्य का नाम उल्लेखनीय है। उनका जन्म 1238 ईसवीं में दक्षिण कर्नाटक के उडुपी के पास पाजकक्षेत्र में हुआ था। पिता का नाम मध्वदेव और माता का नाम वेदवती है। बचपन में इनका नाम वासुदेव था। दार्शनिक होने पर पहले आनंदतीर्थ, फिर पूर्णप्रज्ञ नामों से अभिहित हुए। दस साल के अंतर्गत वेद और उपनिषद ग्रहण कर ग्यारह साल की अवस्था में संन्यासी बनकर एकांत जीवन जीना चाहा। 1249 ईसवीं में श्री.अच्युतप्रेक्ष तीर्थ से संन्यास ग्रहण किया। उन्हें पूर्णप्रज्ञ नाम गुरु ने दिया था।

उन्होंने भक्ति को सर्वोच्च स्थान दिया। उनका दृढ़ विश्वास था कि भक्ति ही आत्मज्ञान और परमात्म ज्ञान की सबसे उत्तम साधना है। भक्ति तो प्रभु के प्रति निरंतर प्रेम प्रवाह है। उनका मत है कि सुदृढ़ और सर्वाधिक स्नेह ही भक्ति है और उसके बिना मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता। अत: उनकी भक्ति दर्शनोचित एवं ज्ञान-विवेक प्रधान है। वैराग्य रहित भक्ति विषय-वासना में परिणत हो सकती है। इसलिए भक्ति में वैराग्य को उन्होंने श्रेष्ठ माना। उनकी यह निष्काम भक्ति अन्य वैष्णव साधकों से उन्हें अलग रखती है। उनके तत्ववाद का अर्थ है– "यथार्थवादी दृष्टिकोण से तर्क"। मध्वा ने उपनिषदों और अद्वैत साहित्य का अध्ययन किया, लेकिन मानव, आत्मा और ईश्वर की एकता के अद्वैतवादी दर्शन से वे आश्वस्त नहीं थे, अपने गुरु के साथ अक्सर मतभेद होते रहे। उन्होंने मठ छोड़कर द्वैतवाद के आधार पर अपना एक तत्ववाद आरंभ किया। इनके सिद्धान्त वस्तुमुखी सत्य के आधार पर प्रतिष्ठित हैं। इन्होंने उपनिषदों और ब्रह्मसूत्रों पर अद्वैतवादियों की अर्थ कल्पना का सशक्त प्रत्याख्यान किया और ब्रह्म और जीव का चिरंतन पार्थक्य सिद्धांतत: स्थापित किया। इसी कारण वे शंकर मत के सबसे विरोधी बने। श्री. शंकराचार्य का अद्वैतवाद माया पर आधारित है। उनके मत में यह संसार यथार्थ है। मायावाद का युक्तियुक्त खण्डन करके मध्वाचार्य ने "मायावाद खण्ड़न" भी लिखा। वे मानते हैं कि आत्मा और ब्रह्म के बीच एक बुनियादी अंतर है, ये दो अलग-अलग अपरिवर्तनीय वास्तविकताएँ हैं, व्यक्तिगत आत्मा ब्रह्म पर निर्भर

है, कभी समान नहीं होती। मुक्ति केवल ईश्वर की कृपा से ही प्राप्त की जा सकती है।

किंवदन्ती के अनुसार उन्होंने वेदव्यास को अपना गुरु स्वीकार कर उन्हीं के आदेशानुसार ब्रह्मसूत्र पर नवीन भाष्य की रचना की। कुलमिलाकर उन्होंने सैंतीस ग्रन्थों की रचना की। इनमें से तेरह प्रारंभिक प्रमुख उपनिषदों पर भाष्य (समीक्षा और टिप्पणी), भगवद्गीता पर 'गीताभाष्य', ऋग्वेद के चालीस भजनों पर टिप्पणी, काव्यशैली में 'महाभारत की समीक्षा', भागवत पुराण पर 'भागवत तात्पर्य निर्णय' नामक टिप्पणी आदि हैं। इनके अलावा विष्णु और उनके अवतारों की भक्ति पर कई स्तोत्र हैं। ब्रह्मसूत्रों पर मध्वा की टिप्पणी का पूरक अणु-व्याख्यान उनकी उत्कृष्ट कृति है। तंत्रसार, दशावतार स्तोत्र आदि भी उनकी अलग कृतियाँ हैं। उनका तत्वचिंतन मूलत: यह मानता है कि सारे पदार्थ सत्य हैं। जो सत्य माना जाता है उसे परम सत्य ही माना जाना चाहिए। पदार्थों की संख्या इस प्रकार है – द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, विशिष्ट, अंशी, शक्ति, सादृश्य एवं अभाव।(1) कर्नाटक संगीत में भी उन्होंने अपना योगदान दिया है। भागवत आट्टा, दशावतार आट्टा आदि लोक कलारूपों द्वारा आम जनता के बीच उन्होंने अपने तत्वों का प्रचार किया। शत्रुओं को भी अपने मधुर भाषण द्वारा आकर्षित कराने के कारण पंड़ित लोगों ने उन्हें 'मधुरभाषी' कहे। 1285 ईसवीं में गुजरात के द्वारका से प्राप्त मूर्ति के साथ उडुपी में श्रीकृष्ण की मूर्ति की प्रतिष्ठा की और उडुपी श्रीकृष्ण मठ की स्थापना भी की। जब वे मठ के प्रमुख बने तो नाम आनंद तीर्थ रखा गया। गोवा के गौड़ सारस्वत ब्राह्मण इनके उपदेश से वशीभूत होकर वैष्णव बने। तीन बार के भारत पर्यटनों में बंगाल, कश्मीर, बद्मीनाथ, वारणासी, द्वारका और तिरुवनन्तपुरम तक घूमकर धर्म का उपदेश दिया। श्रृंगेरी मठाधिपति विद्याशंकार से भेंट हुई। दोनों में मतभेद हुए। कई पंडित उनके साथ मुकाबले में परास्त हुए। उनके द्वैतवाद ने बहुसंख्यक लोगों को आकर्षित किया। कर्नाटक में इसकी ख्याति ज़्यादा है। उनसे संतुष्ट होकर गुरु ने उन्हें वेदान्त चक्रवर्ती बनाया।

परमात्मा और जीवात्मा के अंतराल को समझानेवाली तत्वसंहिता को द्वैतमत कहते हैं। परमात्मा के गुण अनंत हैं। शरीर के बिना सृष्टि का कार्य संभव नहीं है, इस कारण परमात्मा को मध्वाचार्य सशरीर मानते हैं। शरीर तो नित्य, ज्ञानात्मक एवं आनंदात्मक है। इसकी समानता संभव नहीं है, उनके दर्शन में ब्रह्म ही एकमात्र स्वतंत्र सत्ता है। ब्रह्म पूर्ण सत्यों का सत्य एवं नित्यों का नित्य है। उन्होंने मोटे तौर पर जीवों को तीन भागों में बाँटा है-मुक्ति योग्य, तमोयोग्य, नित्य संसारी आदि। उनके अनुसार अंत:करण का परिणाम है ज्ञान। आत्मा का मन के साथ संयोग होता है, मन का इंन्द्रियों के साथ और इंन्द्रियों का विषयों के साथ। तब अंत:करण का परिणाम होता है। यही ज्ञान है। ज्ञान से इच्छा होती है और इच्छा से कर्म। मध्वा दर्शन प्रपंच को मिथ्या या मायिक न मानता है। निष्काम कर्म का संयोजन ज्ञान से कर लेना मोक्ष की इच्छा रखनेवाले मुमुक्षुओं का श्रेष्ठ कर्तव्य है। मोक्ष के चार स्वरूप हैं-(2) कर्मक्षया, उत्क्रान्ति, अर्चिरादिमार्ग, भोग आदि। मुक्ति केवल भगवान विष्णु की कृपा से ही प्राप्त की जा सकती है।

पद्मनाभ तीर्थ, नरहरि तीर्थ, माधव तीर्थ, अक्षोभ्य तीर्थ आदि उनकी शिष्य परंपरा को संपन्न करनेवाले हैं। उनके शिष्यों और अनुयायियों ने उनके पवित्र जीवन चरित्र लिखे हैं। इनमें सबसे प्रमाणित एवं ज़्यादा संदर्भित सोलह सर्गोंवाली संस्कृत जीवनी 'माधव विजय' है, जो नारायण पंड़िताचार्य ने लिखा है।

लोग ऐसा मानते हैं कि वे वायुभगवान के अवतार हैं। भगवान विष्णु के निर्देशानुसार शास्त्रों की व्याख्या करके लोगों को मोक्ष-प्राप्ति की ओर ले जाने

और धर्म परिपालन के लिए उनका अवतार हुआ है। केरल के तुलु ब्राह्मण उनके सिद्धान्तों का अनुसरण करते आए हैं। 1317 ईसवीं में वे स्वर्गवासी हुए। हरेक साल इस पुण्य तिथि को मध्वानवमी मानकर मंदिरों में पूजा-अर्चना की जाती है।

**संदर्भ :**


1. हिन्दी सगुण भक्ति काव्य के दार्शनिक स्रोत, डॉ.रामचन्द्र देव, पृ.127
2. वही, पृ.135


**संदर्भ ग्रंथ :**


1. ब्रह्मसूत्र के वैष्णव भाष्यों का तुलनात्मक अध्ययन – पं. रामकृष्ण आचार्य, प्रकाशक- विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा; वर्ष-1960
2. भारतीय दर्शन की रूप रेखा – हिरियन्ना, प्र. राजकमल प्रकाशन, आगरा; 2011
3. भारतीय दर्शन – डॉ. रमेश मिश्र, प्रकाशक- उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनउ; 2017
4. हिन्दी सगुण भक्ति काव्य के दार्शनिक स्रोत; रामचन्द्र देव, प्र.-लोकभारती प्रकाशन, वर्ष-1988



◆प्रोफसर, हिन्दी विभाग,
यूनिवेर्सिटि कॉलेज, तिरुवनन्तपुरम,
केरल।
मो:9447743225


# निर्मल वर्मा के कथा साहित्य में व्यक्तित्व चिंतन


◆ कु.ज्योति

**शोध-सार**:-"एक लेखक के तौर पर हम जो लिखते हैं, वह साहित्य का कर्ज चुकाने का प्रयास भर है। सांसारिक सुविधाओं के बीच, अस्तित्व के चरम छोर पर जाने का खतरा हम नहीं उठाना चाहते हैं। यह खतरा साहित्य हमारे लिए उठाता है।(1) "निर्मल वर्मा जैसे कालजयी और चिंतनशील लेखक के इस कथन से स्पष्ट है कि वे लेखन को अपना धर्म समझते हैं और धरती पर जन्म लेने का कर्ज़ वे इसीके माध्यम से चुका सकते हैं। निर्मल वर्मा की संवेदना, विचार, चिंतन व सृजन भारतीय स्वाधीनता-आन्दोलन, सुधार-जागरण आज़ादी व उसके बाद के परिवेश व समाज के भीतर गढ़े गए हैं। निर्मल वर्मा संवेदनशील लेखक से कहीं अधिक एक चिंतक हैं। उनका चिंतन ही उनकी कृतियों में आकार ग्रहण करता है और यही चिंतन उनकी सृजनशीलता का आधार है। निर्मल वर्मा एक सुचिंतित मनीषी की भांति भाषा, इतिहास, भूगोल, संस्कृति, साहित्य, समाजशास्त्र, साहित्य के सौन्दर्य शास्त्र, प्राकृतिक परिवेश, मनुष्य की अस्मिता, व्यक्ति का अस्तित्व आदि पर निरंतर चिंतनशील हैं। निर्मल वर्मा अपने कथा साहित्य में मनुष्य के विभिन्न संदर्भों को एक साथ उठाने में सक्षम हैं। उनके कथा-साहित्य में मानवीय संबंधों के बीच आत्मीयताऔर रिक्तता के सूक्ष्म स्तरों की खोज की गयी है। स्वतन्त्रता के बाद भारतीय समाज में जो परिवर्तन हुए उनसे सबसे अधिक प्रभावित मध्यम वर्ग हुआ। आर्थिक और सामाजिक ही नहीं, बल्कि मानसिक स्तर पर भी इस वर्ग को काफी समस्याओं का सामना करना पड़ा है। निर्मल वर्मा ने इसी वर्ग के व्यक्ति और उसकी समस्याओं को अपनी कहानियों और उपन्यासों का विषय बनाया है। व्यक्ति का सीधा संबंध समाज से है। समाज से पृथक सत्ता रखता हुआ भी वह स्वतन्त्र

रूप में जीवन-यापन नहीं कर सकता। अतः वह स्नेह सौजन्य की भावना से परिपूर्ण है। फिर भी वह आत्मकेन्द्रित अधिक है, क्योंकि अंह की रक्षा उसे अधिक प्रिय है। "अतः समष्टि शक्ति को व्यक्ति पर, उसके अधिकारों और स्वतन्त्रताओं पर बल प्रयोग का नैतिक अधिकार नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति अपने हितों और स्वार्थों को जितना समझ सकता है, उतना समाज कदापि नहीं। व्यक्तिमूलक व्यापारों का साध्य व्यक्ति का हित है और उसका एकमात्र ज्ञाता व्यक्ति।"(2)

**बीजशब्द** :- व्यक्ति, मानवीय संबंध, समाज, स्वतन्त्रता, अधिकार, अस्तित्व, अकेलापन, उदासीनता, आधुनिक।

**मूल आलेख** :-निर्मल वर्मा आधुनिक हिन्दी साहित्य के विशिष्ट लेखक हैं। उनका अवदान कथा-साहित्य के क्षेत्र में है। उनके कथा-साहित्य में मानवीय संबंधों के बीच आत्मीयता और मानवीय संबंधों के सूक्ष्म स्तरों की खोज की गयी है। इस खोज में पारिवारिक टूटन, पति-पत्नी का अलगाव, पिता-पुत्र के बीच उदासीनता,प्रेमी-प्रेमिका के संबंधों में तनाव आदि का चित्रण उन्होंने किया है।स्वतन्त्रता के बाद भारतीय समाज में जो परिवर्तन हुए उनसे सबसे अधिक प्रभावित मध्यम वर्ग हुआ। आर्थिक और सामाजिक ही नहीं, बल्कि मानसिक स्तर पर भी इस वर्ग को काफी समस्याओं का सामना करना पड़ा है। निर्मल वर्मा ने इसी वर्ग के व्यक्ति और उसकी समस्याओं को अपनी कहानियों और उपन्यासों का विषय बनाया है। निर्मल वर्मा के यहाँ अधिकतर मध्यवर्गीय पात्र हैं। उन्होंने मध्यवर्ग के व्यक्ति की वैयक्तिक समस्याओं व पारिवारिक जीवन के घात-प्रतिघातों का चित्रण किया है। पारिवारिक संबंधों में घर करती जा रही उदासीनता इस वर्ग की मुख्य समस्या है। निर्मल वर्मा ने अपने कथा साहित्य में उसका भी गहराई से चित्रण किया है। मदन सोनी के अनुसार- "निर्मल वर्मा की कथा भारतीय आदमी की चेतना से अंगीभूत हो चुके उसके औपनिवेशिक अतीत का अपने पात्रों के माध्यम से विषयकरण कर आत्ममन्थन की इस नैतिक ज़िम्मेदारी का ही निर्वाह करती है।उसमें व्याप्त 'नीख अवकाश' आत्म-मन्थन के इन क्षणों  का ही अकेलापन है क्योंकि "आत्म-मन्थन की घड़ी में खामोशी को सहना पड़ता है ताकि आनेवाले कल में सच्चे शब्द को कहा जा सके।(3) "नामवरसिंह- “व्यक्ति - चरित्र वही है जीवन- स्थितियाँ भी रोज़ की जानी-पहचानी ही हैं। लेकिन निर्मल के हाथों वही स्थितियाँ इतिहास की विराट नियति बनकर खड़ी हो जाती हैं और उनके सम्मुख खड़ा व्यक्ति सहसा अपने को असाधारण रूप अकेला पाता है और उसकी ज़बान से निकला हुआ मामूली सा वाक्य एक युगव्यापी प्रश्न बन जाता है।”(4) व्यक्ति का अकेलापन समकालीन मनुष्य का भयावह अकेलापन निर्मल वर्मा के लेखन के केन्द्र में रहा है। अकेलेपन की पीड़ा झेलना और उससे सम्मोहित भी रहना एक अनोखी आधुनिक स्थिति है। निर्मल वर्मा के पात्र भीड़ में या घर में, अकेले कमरे में या पब में या अस्पताल के कमरे में अकेलापन से जूझते हैं। स्थिति की भयावहता यह है कि व्यक्ति को एक-दूसरे के साथ रहते हुए भी अपने अकेलापन की नियति झेलना अनिवार्य सा लगता है। नित्यानंद तिवारी के अनुसार" निर्मल वर्मा के कथा साहित्य में असम्भव को व्यक्त करता हुआ एक बिन्दु है जहाँ सहभागी, सम्बन्धी न हो पाने की गहरी व्याकुल पीड़ा है। लेकिन उसकी असंभावना मनुष्य या व्यक्ति की आन्तरिक और मौलिक प्रतिभा या अस्मिता केलिए सार्थकता का अनिवार्य स्रोत भी है। यानी अकेलापन जहाँ स्थिति के रूप में गहरी पीड़ा है, अर्थ के रूप में सबसे बड़ा वरदान, निर्मल जी की कहानियों में यह पीड़ा और वरदान आत्यन्तिक और समानान्तर हैं। आदमी इसे भोगता है और इसका साक्षात्कार करता है।"(5) निर्मल वर्मा के साहित्य में

पात्रों ने परिस्थितिवश अपने व्यक्तित्व को ऐसे गढ़ लिया है कि वे किसी से आत्मीयता अनुभव ही नहीं कर पाते और इस कारण जुड़ ही नहीं पाते। इसलिए अपने अन्तर्मुखी व्यवहार के कारण खुद में ही सिमटते हुए अकेले पड़ जाते हैं। मदन सोनी के अनुसार-"यह अकेलापन वह नहीं है जो भीड़ के बीच अकेले होने से उभरता है। दरअसल अपनी नियति के अंधकार में, जहाँ तमाम तरह की लौकिक उपस्थितियों, संबंधों से परे होकर मनुष्य अपने को खोजने, पाने और खो देने का विवशता भरा संघर्ष करता है वहाँ वह सचमुच अकेला होता है।" (6)निर्मल वर्मा के पात्र अकेलापन की इसी अंधेरी खोह में भटकते हैं।' 'वे दिन' उपन्यास की नायिका रायना का अस्तित्व एक ऐसी असीम वेदना को धारण किए हुए है जो अंतः सलिला की भाँति उसके भीतर बहती है। वह जीवन में एकाकीपन से जूझती है और बहुत अधिक समय तक किसी का भी साथ उसे बहला नहीं पाता। वह किसी के साथ भी रहे हृदय की अतल गहराई में खुद को अकेला ही पाती है। अपने अकेलापन को कम करने के लिए वह शहर-दर-शहर पुरुष-दर-पुरुष भटकती है। इन्हीं के साथ शारीरिक संबंध स्थापित कर लेने पर वह स्वीकार भी करती है कि वह ज़्यादा दिन अकेली नहीं रह सकती। रायना और इन्दी का शारीरिक संबंध मात्र दोनों का अपने - अपने एकाकीपन को बाँटने की कोशिश मात्र है-"क्या तुम्हारे संग अक्सर ऐसा होता है .... दूसरे शहरों में?"

"हाँ... होता है। मैं ज़्यादा दिन अकेले नहीं रह सकती...."उसका स्वर स्थिर था।"

"मैंने उसका हाथ पकड़ लिया। वह काँप रहा था। हम दोनों अंधेरे में सहसा अकेले हो गए थे... अकेलापन - जो दुख, पीड़ा आँसुओं से बाहर है - जो महज जीने के नंगे बनैले आतंक से जुड़ा है.... जिसे कोई दूसरा व्यक्ति निचोड़कर बहा नहीं सकता।"(7)

इन चरित्रों का अकेलापन ऐसा अकेलापन है जो सबके साथ होकर भी अपनी जगह बना लेता है। ये ऐसे व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं जो अपने अकेलेपन में चिरस्थाई हो गये है। अकेलेपन को दूर करने का कोई प्रयत्न इनके द्वारा नहीं किया जाता। अकेलापन पीड़ा देता है, भय पैदा करता है, फिर भी वे अपने अकेलेपन को बनाये रखना चाहते हैं। 'अकेलापन' के विषय में निर्मल वर्मा की मान्यता है "मनुष्य का यह लावारिस अलगाव और अधूरापन कोई आधुनिक, पश्चिम बोध की देन नहीं है-वह मनुष्य के मनुष्यत्व के बीच एक कीड़े की तरह विद्यमान है, धरती पर उसके महज होने के बोध में निहित है। उसकी समूची मिथक संरचना, धर्म-विधान, ईश्वर कल्पना और हमारे समय में संपूर्ण क्रांति का स्वप्न इसी अभिशप्त अनास्थावस्था से छुटकारा पाने का गौरवपूर्ण, ट्रैजिक और बीहड़ प्रयास है।"(8) साहित्य निर्मल वर्मा के लिए अकेलेपन से मुक्ति का रचनात्मक प्रयास प्रतीत होता है। अकेलापन का चरम रूप 'जलती झाड़ी' कहानी में वर्णित हुआ है। अपने अकेलेपन को नायक इस प्रकार कहता है- "वे चले गए थे, मुझे अपने अकेलेपन पर छोड़कर। मैं फिर वहाँ अकेला छूट गया था, किन्तु उनके जाने के बाद पहलेका-सा अकेलापन वापस नहीं आया। जब तक अकेलापन संग रहता है,सही मायनों में तब हम अकेले नहीं होते। अब मैं सिर्फ अपने संग था और मुझे यह ख्याल काफी भयानक लगा कि वे दोनों मुझसे कुछ छीन ले गए हैं जो अब तक मेरे संग था।"(9)

मनुष्य के निजी क्षण उसे अस्तित्व अन्वेषण की ओर ले जाते हैं। और यही आधुनिकता भी है जहाँ मनुष्य अपने अस्तित्व के प्रति बेहद सतर्क हो जाता है। यही सतर्कता उसे सजगता या कहें कि स्वतन्त्रता का मार्ग दिखलाती है। स्वतन्त्रता ही उन्हें अन्यों से अलग खड़ा करती है। और जब वे अपनी वहन की

गई स्वतन्त्रता में असफल होते हैं तो निरर्थकताबोध अनुभव करते हैं। यह निरर्थकताबोध तब और अधिक बढ़ जाता है जब कहीं से किसी परिवर्तन की संभावना नहीं दिखाई देती है।निर्मल वर्मा के साहित्य में अस्तित्वबोध और स्वतन्त्रता के अलग-अलग कारण हैं- बेकारी, प्रेम में असफलता, भविष्य की आशा व निराशा आदि। 'परिन्दे' कहानी के डॉ. मुकर्जी सोचते हैं- "मैं कभी-कभी सोचता हूँ इन्सान जिन्दा किसलिए रहता है- क्या उसे कोई बेहतर काम करने को नहीं मिला? हज़ार मील अपने मुल्क से दूर मैं यहाँ पड़ा हूँ- यहाँ कौन मुझे जानता है- यहीं शायद मर भी जाऊँगा। हार्बट, क्या तुमने कभी महसूस किया है कि एक अजनबी की हैसियत से परायी ज़मीन पर मर जाना काफी खौफनाक बात है।"(10)निर्मल वर्मा के पात्रों में अपनी स्वतन्त्रता की सजगता इतना गहन रूप ले चुकी है कि पति - पत्नी और प्रेमी-प्रेमिका के संबंधों में भी अस्तित्वबोध कायम रहता है- "लगता था मानो जो बातें हमें एक-दूसरे से करनी चाहिए वे हम अपने से ही कर लिया करते थे और कहीं दूर जाकर उस मौन को समझ लिया करते थे जो बातों से बाहर था, किन्तु हम दोनों का अपना था। आज सोचता हूँ तो लगता है कि नीरजा का अपना एक अलग अस्तित्व था जिसे मैं हर क्षण महसूस करता था, किन्तु जिसे मैं कभी छू भी नहीं सका।"(11)

अस्तित्वबोध पात्रों में तब और अधिक गहरा जाता है जब वे पराये शहरों में पहचान के संकट से जूझने लगते हैं। 'जलती झाड़ी' कहानी का पात्र पूरे समय अपने होने को तलाशता रहता है- "मुझे अपने भीतर एक अजीब-सी बेचैनी महसूस होने लगी। उसे मेरे अस्तित्व का बिल्कुल भी आभास नहीं, हालाँकि मैं उसके इतने पास बैठा हूँ- यह मुझे अत्यंत अस्वभाविक-सा जान पड़ा। अनजाने शहरों में कभी-कभी आत्मीयता की भूख कितनी उत्कट हो जाती है, यह उस क्षण से पहले मैं नहीं जान पाया था।"(12)

निर्मल वर्मा के साहित्य के अधिकांश पात्र 'पिक्चर पोस्टकार्ड' के नवयुवक,'एक चिथड़ा सुख' की बिट्टी और इरा, 'मायादर्पण' का लड़का, 'सितम्बर की एक शाम' का नवयुवक, 'माया का मर्म' का लड़का, 'कव्वे और कालापानी' का बड़ा भाई, 'अंतिम अरण्य' के निरंजन बाबू और टिया, 'वे दिन'की रायना अपने-अपने स्वतन्त्र अस्तित्व की तलाश में अपनी शर्तों पर जीवन जीते हैं। इस कड़ी में अनेक बार निराशा, उदासी से उनका सामना होता है। लेकिन इसी यात्रा में वे अपने होने को पहचान पाते हैं। अपनी अस्मिता के प्रति जागरूकता ही उनके जीवन की सार्थकता है।

हृदयशून्यता का कारण पूँजीवाद था जिसके परिणाम आत्मनिर्वासिता, अकेलापन, परिचितों के बीच अजनबीपन आदि हैं। इस उदासीनता, अजनबीपन, अकेलापन और आत्मनिर्वासन में एक गहरी यातना है। 'वे दिन' के नायक इन्दी के घर से पत्र आने पर उसकी प्रतिक्रिया उसकी उदासीनता का ही प्रतीक है- "सूराख के नीचे से पन्ने पर मेरी बहन द्वारा लिखे गए कुछ शब्द बाहर झाँक रहे थे। मैंने उन्हें पढ़ा और वे मुझे कुछ अजीब-से लगे- मुकम्मल वाक्यों में शायद वे मुझे उबा देते,लेकिन इस तरह आस-पास के पड़ोसी शब्दों से अलग होकर सूराख से बाहर झाँकते हुए वे मुझे काफी निरीह और रहस्यमय से जान पड़े, जिसके पीछे मेरी बहन थी, घर था, घर के कोने थे.... मैंने उसे दुबारा जेब में रख दिया। उस रात मैं वहाँ नहीं जाना चाहता था।"(13)

"मैंने बत्ती बुझा दी। बहन का पत्र अब भी मेरी जेब में था, लेकिन मैंने उसे अगले दिन के लिए छोड़ दिया।"(14)

निर्मल वर्मा ने अपने साहित्य में खास मानसिकतावाले पात्रों को लिया है। उनके पात्र अंतर्द्वंद्व के बीच जीते हुए लगते हैं। एक संघर्ष उनमें होता है, जो मुखरित नहीं हो पाता, लेकिन अनवरत चलता रहता है। निर्मल वर्मा बौद्धिक दृष्टि से जागरूक, समकालीन प्रश्नों और समस्याओं से जूझनेवाले रचनाकार हैं।"उनके पात्रों द्वारा उठाया गया प्रश्न युगव्यापी प्रश्न बन जाता है।"(15) निर्मल वर्मा के लेखन के विषय में प्रसिद्ध आलोचक नामवर सिंह लिखते हैं कि वे भारतीय समाज के किसी खास वर्ग के लिए नहीं, बल्कि पूरे विश्व और मानव की नियति के बारे में चिंतित नज़र आते हैं। मनुष्य की परिस्थितियों के प्रति पीड़ा उनके लेखन में स्पष्ट परिलक्षित होती है।' निर्मल वर्मा ने अपने पात्रों के मन की परतों को खोला, पढ़ा, परखा और फिर शब्दबद्ध किया। निर्मल वर्मा ने अपने पात्रों को उसी रूप में लिया, वे जैसे हैं- "वे जहाँ हैं वहाँ हैं, जस के तस। उन्होंने उनको वहाँ से उठा भर लिया है पूरी ईमानदारी के साथ।"(16) उनके पात्रों की एक दुनिया बाहरी है लेकिन बाहरी दुनिया से बिल्कुल इतर उसी के समानन्तर भीतर कुछ घटता है जो दूसरे लोग न देख पाते है न समझ पाते हैं। शायद यही कारण है कि इनके पात्र अधिक अन्तर्मुखी दिखाई पड़ते हैं।

"निर्मल वर्मा के पात्रों की दुनिया में भीतर कहीं कुछ भी नहीं बदलता,सिर्फ अलग-अलग कोणों से यही झलकता है कि भीतर कहीं कुछ आत्मीय है जिसे खोलते हुए प्रमुख खुद डरता है, एक भुरी-भुरी सी मूर्ति जो हवा लगते ही बिखर जाएगी।"(17)लतिका को लगा कि जो वह याद करती है, वह भूलना भी चाहती है,लेकिन जब सचमुच भूलने लगती है, तब उसे भय लगता है कि जैसे कोई उसकी किसी चीज़ को उसके हाथों से छीने लिये जा रहा है, ऐसा कुछ जो सदा के लिए खो जाएगा।"(18)निर्मल वर्मा अपने पात्रों के दुःख के मन को, संघर्ष की पीड़ा को भीतर से पढ़ते हैं। उनकी रचनाओं में लगातार सूनेपन, अकेलेपन, उदासीनता और नीरसता की हवा चलती है जो धीरे-धीरे लेकिन भीतर से इन पात्रों को हिलाती रहती है। उसी अन्तर्मन के मौन जगत् को निर्मल वर्मा ने शब्द दिए हैं।

**निष्कर्ष**:- अतः निर्मल वर्मा के व्यक्ति विषयक विश्लेषण में व्यक्ति के अनेक स्वरूप हैं। आधुनिक परिस्थितियों के कारण मनुष्य की संवेदना में आए परिवर्तन को निर्मल वर्मा ने अपने पात्रों के माध्यम से रेखांकित किया है। "मनुष्य होना अपने में ही एक तनाव की स्थिति में जीना है। यह तनाव किसी खास सामाजिक परिस्थिति या केवल व्यक्तियों के बीच में किसी अलगाव या गलतफहमी के कारण नहीं होता। मनुष्य का मनुष्य के रूप में जीना ही एक सतत् तनाव में जीने की प्रक्रिया है।"(19) उनके पात्र कहीं अतीत जीवी हैं, कहीं स्वतन्त्रता के आकांक्षी, कोई बीमार व्यक्ति हैं तो कुछ सुख की तलाश में यहाँ वहाँ भटकता मनुष्य।"उनके पात्र किसी संधिस्थल पर रहनेवाले थे, न भीतर, न बाहर-किसी देहरी पर। यह देहरी कहीं भी खुल सकती थी- मन में, जीवन में, वय में पानी में लकीर की तरह।" (20)

**संदर्भ:**

1.वर्मा निर्मल, साहित्य का आत्म- सत्य, प्रथम संस्करण,वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017 ई.पृष्ठ स. 34

2. वही, पृष्ठ. स. 145

3.सिंह प्रेम (सं.); निर्मल वर्मा : सृजन और चिंतन, फिफ्थ डायमेंशन पब्लिकेशन्स, दिल्ली, सं. 1989, पृष्ठ स. 65

4. सिंह नामवर, कहानी नयी कहानी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सं.2008,पृष्ठ स. 6
5.सिंह प्रेम (सं.); निर्मल वर्मा : सृजन और चिंतन, फिफ्थ डायमेंशन पब्लिकेशन्स, दिल्ली, सं. 1989, पृष्ठ स. 46
6. वही, पृष्ठ स. 68
7.वर्मा निर्मल, वे दिन, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 13वां संस्करण-2007 ई. पृष्ठ स. 72
8.वर्मा निर्मल, साहित्य का आत्म- सत्य, प्रथम संस्करण,वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017 ई.पृष्ठ स. 89
9. वर्मा निर्मल, जलती झाड़ी, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम सं.1965ई. पृष्ठ स. 92
10.वर्मा निर्मल, परिंदे, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ स. 112
11. वही,पृष्ठ स. 132
12. वही, पृष्ठ स. 135
13.वर्मा निर्मल, वे दिन, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 13 वां संस्करण-2007 ई. पृष्ठ स. 74
14. वही, पृष्ठ स. 76
15. सिंह नामवर, कहानी नयी कहानी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सं.2008,पृष्ठ स. 7
16. वही, पृष्ठ स. 10
17. वही, पृष्ठ स. 16
18. वही, पृष्ठ स. 20
19. वाजपेयी अशोक (सं.), निर्मल वर्मा, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं. 1990 पृष्ठ स. 87
20. पचौरी सुधीश, निर्मल वर्मा और उत्तर उपनिवेशवाद, राधाकृष्ण प्रकाशन,दिल्ली, प्रथम सं. 2003, पृष्ठ स. 54

◆शोधार्थी, दिल्ली विश्वविद्यालय
ई.मेल:chauhan1991jyoti@gmail.com
मो.9015697401

# सुब्रह्मण्य भारती की कविताओं में राष्ट्रीय चेतना

**◆डॉ. सुमा. आई**

**शोधसार:** भारत तो वैविध्यपूर्ण देश है। बीसवीं शताब्दी भारतीय पुनर्जागरण की शताब्दी है। इसी शताब्दी में भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन अपनी चरम विकास अवस्था को पहुँचा। इस आंदोलन का प्रभाव भी भारतीय भाषाओं पर हुआ और उनमें अन्य साहित्य के साथ ही राष्ट्रीय साहित्य का भी निर्माण हुआ। अंग्रेज़ राज के अधीन तड़पती भारतीय
जनता के दिल-दिमाग में चेतना पैदा करने की कोशिश अनेक साहित्यकारों ने की है। तमिलनाडु में जन्मे सुब्रह्मण्य भारती ने अपने ओज भरे गीतों से तमिल जनता के मन में देशप्रेम पैदा करने का काम किया। भारती का साहित्य भारत तथा भारतीयता की अवधारणा का परिचायक है। वे ऐसे भारत की कल्पना करते थे जो आत्मनिर्भर हो और विज्ञान तथा तकनीकी क्षेत्र में अग्रगामी हो और सभी भारतवासियों को सब सुविधाएँ प्राप्त हों। उनकी रचनाओं से प्रेरित होकर दक्षिण भारत में आम लोग आज़ादी की लड़ाई में कूद पड़े।

बीज शब्द- स्वतंत्रता आन्दोलन, राष्ट्रीय चेतना, धार्मिक आडंबर, परधीनता, सांस्कृतिक एकता।

तमिल दक्षिण भारत की सर्वाधिक प्राचीन और अत्यंत समर्थ एवं सुसंस्कृत भाषा है। तमिल पुराण के अनुसार भगवान शिव उस भाषा के जनक हैं। उन्हीं की अपेक्षा से अगस्त ऋषि ने इस भाषा की व्याकरण की रचना की थी। एम . श्रीनिवास

अय्यंकार के अनुसार " तमिल का द्रविड़ परिवार में वही स्थान है, जो संस्कृत का आर्य परिवार में है।"[1] तमिल के राष्ट्रीय गीत अपनी विशेषता रखते हैं। उनमें विशुद्ध भारतीय प्रेम के साथ ही राष्ट्रवादी भावनाएँ भी बड़े सुंदर ढंग से अभिव्यक्त हुई हैं। राष्ट्रीय भावना के साथ मातृभाषाभिमान का जन्म स्वाभाविक कही था। तमिल भाषी नेताओं ने अपनी भाषा में राष्ट्रीय संदेश देना आरंभ किया। इसी समय सुब्रह्मण्य भारती चतुर्मुखी प्रतिभा के साथ तमिल साहित्य आकाश में उदित हुए। उनके गीतों में भारत के गुणगान के साथ ही परमशक्ति की उपासना भी है। अपनी इस विशेषता के कारण उनके राष्ट्रगीत-धार्मिक गीत भी बन गए हैं। उन्होंने अपने 39 वर्ष के जीवन में तमिल साहित्य एवं तमिल भाषी जनता को एक महान क्रांतिकारी संदेश देकर अपूर्व शक्तिशाली बना दिया।

सुब्रह्मण्य भारती का जन्म 11 दिसंबर 1882 को मद्रास राज्य के तिरुनेलवेली जिले के एट्टयपुरम में हुआ था। उनके बचपन का नाम सुब्बैया था। जब ये पाँच वर्ष के थे तभी इनकी माँ लक्ष्मी अम्माल का निधन हो गया। पिता भारती को इंजीनियर बनना चाहते थे और वे अनुशासनप्रिय भी थे। उन्होंने भारती को अंग्रेज़ी पढ़ने केलिए तिरुनेलवेली भेज दिया। लेकिन भारती अंग्रेज़ी शिक्षा नीति के खिलाफ़ थे। उनकी रुचि सदा साहित्य की ओर थी। वे तमिल साहित्य का अध्ययन किया करते थे। ऐसी हालत में भारती मेट्रिकुलेशन परीक्षा में फेल हो गए। पिता ने अपने बलबूते पर उन्हें स्थानीय रियासत की सेवा में रख दिया। भारती को तमिल और अंग्रेज़ी का अच्छा ज्ञान था। इसलिए राजा ने उनका स्वागत किया। लेकिन भरी सभा में एक विद्वान ने परीक्षा में फेल होने की बात को लेकर उनको अपमानित करने की कोशिश की तो सुब्रह्मण्य ने आरोपित करनेवाले को वाद-विवाद प्रतियोगिता में पराजित किया। विद्वान सभा के अध्यक्ष 'विरुदैशिवज्ञानयोगी' ने बालक सुब्बैया की प्रतिभा से प्रसन्न होकर उनको 'भारती' की उपाधि प्रदान की। उनकी आयु इस समय मात्र 11 साल थी। उसके बाद वे 'सुब्रह्ण्य भारती' नाम से प्रसिद्ध हुए।[2]

भारती का मन पराधीन भारत की अवस्था को लेकर व्याकुल हो उठते थे। पन्द्रह वर्ष की आयु में भारती का विवाह चेल्लम्मा के साथ हो गया। करीब एक साल बाद पिता चिन्नस्वामी सुब्रह्मण्य अय्यर की मृत्यु हो गई। पिता के निधन के बाद वे तीर्थयात्रा करते हुए काशी पहुँचे। काशी प्रवास के दो वर्षों के दौरान उन्हें अंग्रेज़ी कविता के प्रति दिलचस्पी पैदा हुई। कविता की परंपरागत सीमाओं को लांघकर अपने लिए एक नया क्षितिज तलाश करने का हौसला भी उनमें पैदा हुआ। उन्होंने प्राचीन पंडिताऊ शैली के स्थान में नई शैली और प्राचीन छंदों के स्थान में नए छंदों का प्रयोग आरंभ किया। उन्होंने जिस साहित्य का निर्माण किया उससे तमिल भाषियों में अपनी भाषा के प्रति अनुराग उत्पन्न हुआ और उनकी भावनाएँ संकीर्णता से ऊपर उठकर महान राष्ट्रीयता की ओर प्रवृत्त हुईं। अंग्रेज़ी के उच्च ज्ञान का अभिमान करनेवाले भी जनता की भाषा में लिखने और बोलने को विवश हुए। भारती का पद्य और गद्य दोनों पर समान अधिकार था। उन्होंने एक कवि, लेखक और अनुवादक के रूप में तमिल साहित्य की जो सेवाएँ की हैं वे चिरस्मरणीय रहेंगी। भारती की तूलिका का स्पर्श पाकर तमिल भाषा की शक्ति बहुत बढ़ गई। वह अद्वितीय व्यंजना लेकर निर्भय गति से प्रगति के पथ पर अग्रसर होने लगी। कवि ने सर्वप्रथम अंग्रेज़ी भाषा का ज्ञान और उच्च पदों पर आसीन भारतीयों के दंभ, सामाजिक विषमता और धार्मिक आडंबरों की कड़ी आलोचना अपनी ओजपूर्ण और तीखी वाणी में आरंभ की। इसके साथ ही जनता के सामने आदर्श समाज का चित्र भी उपस्थित कर उसे आदर्श की ओर बढ़ने की प्रेरणा दी।

भारती लोकमान्य तिलक और अरविंद

घोष से बहुत प्रभावित थे। तिलक के प्रति आदर व्यक्त करते हुए उन्होंने एक कविता भी लिखी थी। अरविंद की प्रेरणा से उन्होंने वैदिक ऋषियों की कविता की एक लंबी भूमिका लिखी। उन्होंने पतंजलि के 'योग सूत्र' और 'भगवद्गीता' का अनुवाद किया। उनके राष्ट्रगीत तमिल भाषी भू-भाग तक सीमित न रहे, उनमें समूल भारत के प्रति अनुपम अनुराग और विश्व बंधुत्व की उच्च भावना भी निहित थी। इसीलिए उनके राष्ट्रगीत तत्कालीन राष्ट्रीय आंदोलन में महान प्रेरक सिद्ध हुए। धार्मिकता का समावेश उनके इन गीतों की विशेषता है। उनके ये गीत शक्ति गीत के नाम से प्रसिद्ध हैं।

हिंदी में महाकवि. भारती के लेखन को लेकर एक सार्थक और महत्त्वपूर्ण ग्रंथ सन् 1985 में 'तमिळ भारदियार् कविदैहळ' (सुब्रह्मण्य भारती की कविताएँ) नाम से 'भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ' से प्रकाशित हुआ है। इसके लिप्यंतरण और गद्यानुवाद का कार्य आचार्य ति. शेषाद्रि ने किया है। पद्यानुवाद आचार्य रामेश्वर प्रसाद पाण्डेय, शास्त्री रमेश ने किया है। यह पुस्तक कुल 1101 पृष्ठों की है। इसमें विषय-सूची का जो वर्गीकरण किया गया है, वह अंग्रेज़ी और तमिल में लिखी गई महाकवि की रचनाओं से जुड़ता है। 'राष्ट्रीय गीत' विषय के अंतर्गत 'भारत-देश', 'तमिलनाडु', 'स्वतंत्रता', 'राष्ट्रीय आन्दोलन के गीत', 'राष्ट्रनेता' और 'अन्य देश' में विभाजन किया गया है। दूसरा प्रकार 'स्तुति-गीत' का रखा गया है, इसके अंतर्गत आराध्य देवी-देवताओं की वंदना है, इसके बाद 'दार्शनिक ज्ञान-गीत' है। तीसरा 'नीति' से सम्बंधित है। इसके बाद 'समाज' सम्बन्धी कविताएँ हैं। फिर 'फुटकर गीत' हैं। तत्पश्चात् 'बड़े सज्जन लोग' और 'आत्मकथा' का प्रवर्ग बनाया गया है। इसके बाद 'वचन-कविता' का नया वर्ग है। फिर 'कान्हा-गीत' का नया वर्ग है। 'पांचाली शपथ' (प्रथम और दूसरा भाग) अलग प्रवर्ग है। इसके पश्चात् 'कोकिल-गान' है। तदुपरांत 'नवीन-गीत' है। हिंदी के सुप्रसिद्ध आलोचक रामविलास शर्मा ने महाकवि के साहित्य को लेकर विस्तार से लिखा है। उन्होंने 'भारतीय संस्कृति और हिंदी प्रदेश' (2012) पुस्तक के दूसरे भाग का दसवाँ अध्याय महाकवि ('सुब्रह्मण्य भारती के साहित्य में जातीय चेतना') के साहित्य को आधार बनाकर लिखा है। इस अध्याय के ग्यारह उप अध्याय हैं, जो इस प्रकार हैं -"पराधीन भारत में नव जागरण, अंग्रेज़ी राज को चुनौती, सांस्कृतिक विरासत की अस्त्रसज्जा से साम्राज्यवाद का विरोध, भारतीय संस्कृति-रूढ़ियों के विरोध में, भारती के चिंतन में योग की भूमिका, भारती का जीवन-संघर्ष, भारती के चिंतन में स्वाधीन भारत का स्वरूप, भारती के चिंतन में जातीय चेतना- भाषा, भारती के चिंतन में जातीय चेतना तमिल सिद्ध परंपरा, भारती के साहित्य में जातीय चेतना तमिल भक्ति परंपरा, तमिल नवजागरण को भारती की देन आदि। "[3]

उनका 'पांचाली शपथ' कहने के लिए महाभारत की एक कथा के आधार पर रचित खंड काव्य है। किंतु कवि ने उसे इस ढंग से उपस्थित किया है कि उसमें अपने काल की भारत की दुरवस्था का सजीव चित्रण हुआ है और इस प्रकार वह पौराणिक काव्य होने पर भी राष्ट्रीय काव्य बन गया है। उन्होंने अपने 'कान्हा गीत' में श्रीकृष्ण के विभिन्न रूपों का चित्रण करते हुए उसमें आध्यात्मिक विचारधारा का समावेश कर दिया है।

भारती को राष्ट्रीय राजनीति में सक्रिय

करने का श्रेय अखबार 'स्वदेशी मित्र' को जाता है। उन्होंने 'स्वदेशी मित्र' के सहायक संपादक तथा 'इंडिया' नामक तमिल साप्ताहिक के प्रधान संपादक के रूप में पत्रकार जगत में एक आदर्श उपस्थित किया था। स्वदेशी मित्र में उनका काम तो अंग्रेज़ी खबरों को तमिल में अनूदित करना था। पत्रकारिता के क्षेत्र में आने से पहले वे अपने काव्य में शास्त्रीय तमिल का ही इस्तेमाल करते थे। लेकिन अखबार की आवश्यकता के अनुरूप उन्होंने साधारण लोगों की भाषा में लिखना प्रारंभ किया। पत्रकारिता ने भारती के काव्य को एक नई रचना-शैली प्रदान की। अखबार से जुड़ने के कुछ समय पश्चात राष्ट्रीय महत्व की एक घटना घटी। वह थी बंगाल का विभाजन। विभाजन ने भारती के अंतर्मन को गहराई से छू लिया था। उन्होंने भारत की एकता को लेकर कविताएँ लिखीं। भारतीय जनता अपने मन में एकदेशियता का भाव महसूस कर रही थी। भारती अंग्रेज़ी राज्य को न मानकर बंगाल की जनता की मेधा को मानते थे।

माता के मन को हितकारी यही प्रतिकार
बनते गौरव गान पुत्र जब उसके यशधर
ऐसे तुमने दिया मंगलमयकारी
इस भूतल पर कर जाए यश कीर्ति तुम्हारी[4]

उनका 'ज्ञान रथम ' कविता भारत की स्वतंत्रतापूर्व की सामाजिक स्थिति पर प्रकाश डालता हुआ आदर्श समाज का चित्र उपस्थित करता है। कवि की 'मुरशु' कविता विश्व बंधुत्व की भावना व्यक्त करती है। इनके अतिरिक्त उनकी दो रचनाएँ 'भारती छियासठ' और 'वेद ऋषि गठित कविदै' भी हैं। इनमें से प्रथम में उनकी आध्यात्मिक विचारधाराओं का समावेश है और द्वितीय में उन्होंने वैदिक ऋचाओं के आधार पर कुछ गद्य गीत लिखे हैं।

भारती का साहित्य मुख्यतः काव्यात्मक है। कविता का आधार गीत है। गीत का सम्बन्ध गान से है। यह आदि मानव का पहला सांस्कृतिक-सामूहिक स्वर है। इस 'स्वर' की समझ कवि को है। इसको कैसे देश का सामूहिक गान बनाया जाये? इसका बोध भी उन्हें था। वे शब्द, संगीत और गायन को एक साथ एक माला में पिरोते हैं। वे सांगीतिक परंपरा का संधान करते हुए उसे राष्ट्र प्रेम से जोड़ते हैं और तत्कालीन देश की परिस्थितियों के अनुरूप सांस्कृतिक एकता का सूत्रपात करते हैं। देश के भूगोल को कविता का विषय बनाकर अतीत से संवाद स्थापित करते हैं। इस क्रम में बंकिम का पूर्ववर्ती लेखन उनके लिए प्रेरणा का काम करता है। उसके अभिप्राय को नवीन सन्दर्भों में व्यापक विस्तार देते हैं। जैसे-

"आओ गाएँ वन्देमातरम'।
भारत माँ की वन्दना करें हम।
ऊँच-नीच का भेद कोई हम नहीं मानते,
जाति-धर्म को भी हम नहीं जानते।"[5]

राष्ट्रीय चेतनता के लिए भारती ने 'वंदे मातरम' को एक मंत्र के रूप में स्वीकार किया था। भारती ने 'वंदेमातरम' का तमिल में अनुवाद प्रस्तुत किया। इसके अलावा वंदे मातरम नाम से अन्य कविताएँ भी लिखीं। 'वंदे मातरम' क्रांतिकारी आंदोलन केलिए भावनात्मक महत्व रखता था

"आर्य भूमि विख्यात हमारी भारत माता
उस पर प्रेमलता को लखा तनिक कुम्हलाता
जीवन-दान उसे करने के लिए (निरंतर)
वर्षा-सम है यह 'वंदे मातरम' गीत - स्वर" [6]

भारती 'वंदे मातरम' की संज्ञा बाल सूर्य से देते हैं जो कि तमाम तिमिर का नाशकारक है। भारती इस नारे का प्रभाव जानते थे, क्योंकि बीसवीं सदी के आरंभ में अंग्रेज़ों को तिलमिलाने के लिए यह नारा लगाना ही काफी था।

देश के भीतर अविद्या और अंधविश्वास के कारण

पनपी मान्यताओं तथा भेद भाव को कवि मानव जाति पर कलंक के रूप में देखते हैं। देश की लड़ाई और मुक्ति में सभी का सहयोग अपेक्षित है। सामासिक संस्कृति के सन्दर्भ भी इस कविता को नवीन आयाम देते हैं। नस्लवाद के सिद्धांत की भी आलोचना है। देश की एकजुटता का संकल्प कविता का मूल विषय है। सम्पूर्ण देशवासियों को एक साथ जोड़ा गया है। इस रूप में भक्तिकाल की भक्ति को देशभक्ति के साथ रूपांतरित किया गया है। आधुनिक भावबोध, समाज, देश, विज्ञान, तर्क और इहलौकिकता को महत्त्व देते हैं। ये सारे प्रसंग इस कविता को आधुनिक बनाते हैं।

भारती अपनी कविता 'वंदे मादरम्' में भारत की संपूर्ण जनता से वंदे मातरम गाने का आह्वान करते हैं। भारती महसूस करते हैं कि भारतीय जनता की गुलामी का कारण उनकी आपसी फूट तथा ऊँच-नीच की भावना है। इसीका फायदा उठाकर अंग्रेज़ों ने अपना राज्य स्थापित किया है। भारती संपूर्ण जनता को आपसी भेद भुलाकर स्वतंत्रता की ओर बढ़ने की सलाह देते हैं। 'वंदे मादरम्-2' कविता में भारती भारतीय जनता के तेजस्वी गुणों का वर्णन करते हुए उनसे 'वंदे मातरम' गाने को कहते हैं। वस्तुतः वंदे मातरम पर भारती का ज़ोर इसलिए था कि इस गान में भारतीयों को आपस में जोड़ने की अद्‌भुत शक्ति थी। इसी कारण से भारती इसे जातीय गीत की संज्ञा देते हैं। भारती ने इसके दो तमिळ अनुवाद प्रस्तुत किए। इस गीत के अनुवाद की आवश्यकता भारती को इस कारण प्रतीत हुई कि भारती का सरोकार सामान्य तमिळ जनता से था और वे 'वंदे मातरम' का मूल समझ पाने में भाषाई कारणों से अक्षम थे। भारती ने इस कारण सरल तमिळ में गाए जा सकने योग्य छंदों में इसका अनुवाद प्रस्तुत किया।

भारती की राष्ट्रीय कविताओं की विषय – वस्तु भारत देश की पराधीन स्थिति, उसके पूर्व के गौरव तथा उसके आगामी भविष्य में पुनः श्रेष्ठ होने के भावों से युक्त हैं। इन कविताओं में भारत नाम मात्र को विभिन्न दुखों का भंजक तथा उत्साह प्रदान करनेवाला कहा गया है। भारती 'बारद नाडु' कविता में कहते हैं -

"मंजु मुकुट मणि सब देशों में भारतवर्ष हमारा है
आन (बान) में ज्ञान-ध्यान में, मान में श्रेष्ठ यही
अन्नदान में, सुधा सरीखे काव्य, गान में श्रेष्ठ यही है।"[7]

कवि की देशभक्तिपरक कविताएँ आज़ादी के स्वर को मुखर बनाती हैं, जैसे- 'भारतमाता', 'जय भारत', 'भारत मातृभूमि', 'गुरुगोविन्द', 'लोकमान्यतिलक', 'आज़ादी की भूख', 'तमिल-स्तुति' आदि कविताएँ। भारती द्वारा तमिळ प्रदेश, तमिळ भाषा आदि पर भी गीत लिखे गए। इन गीतों से यह धारणा नहीं बनानी चाहिए कि भारती क्षेत्रीयता को बढ़ावा दे रहे थे। यह गीत भारती की राष्ट्रीय चेतना का परिणाम ही है। व्यक्ति जब तक अपनी जन्मभूमि के लिए प्रेम का भाव विकसित नहीं कर लेता तब तक उस केलिए एक राष्ट्र का नागरिक होना असंभव है। भारती इस स्थिति को जानते थे। साथ ही वे इस तथ्य से भी परिचित थे कि एक बड़ी तस्वीर कई छोटी तस्वीरों से मिलकर पूरी होती है। भारतीयता की भावना के लिए तमिळ जनता में अपने क्षेत्र के प्रति भी आदर का भाव होना चाहिए। सुब्रह्मण्य भारती ने 'शेन्दमिळ नाडु' कविता में तमिळ प्रदेश का सुन्दर रूप उपस्थित किया है। ऐसा प्रदेश जो प्राकृतिक – सांस्कृतिक रूप से श्रेष्ठ स्थिति का हो, जिसका व्यापार चीन, मिस्र आदि देशों तक फैला हो उस प्रदेश का नाम लेते भारती का मन आनंदित हो जाता है।

"तमिलनाडु यह नाम घोलता सुधा हमारे कानों में
पितृ देश – यह नाम शक्ति भरता साँसों में।" [8]

परंतु भारती इस तमाम प्राचीन वैभव के बीच वर्तमान तमिळनाडु की स्थिति को भूलते नहीं हैं। समय की गति श्रेष्ठतम वस्तु का भी क्षरण कर देती है। भारती इस तथ्य से परिचित थे। भारती की उपर्युक्त कल्पना आगामी भविष्य के लिए है। भारती केवल यहीं नहीं रुकते बल्कि वे भारत की आर्थिक और सांस्कृतिक एकता के लिए भी यत्न करते हैं।

सम्पूर्ण भारती साहित्य की विशिष्ट रचनाएँ भारत की स्वतंत्रता पर लिखी गयी कविताएँ हैं। इन कविताओं की रचना उस समय हुई थीं जब भारत में स्वतंत्र होने की भावना का उदय भी नहीं हुआ था। तिलक ने ज़रूर स्वतंत्रता के अधिकार की बात कही थी , परंतु वह भी राजनैतिक स्वतंत्रता से ज़्यादा नहीं थी। भारती ने स्वतन्त्रता को आधुनिक व्यक्ति की प्राथमिक आवश्यकता के रूप में निरूपित किया। स्वतंत्रता के बदले में किसी भी क्षुद्र भौतिक सुख को लेने को भारती सूर्य के बदलें में जुगनू लेना जैसा मानते हैं।

भारती के सामने उस समय बड़ा प्रश्न उपनिवेशी गुलामी के तोड़ना था, क्योंकि उसके बाद ही व्यक्ति अन्य बन्धनों से मुक्ति पा सकता है। भारती इसीलिए मृत्यु से पहले स्वतंत्र देश में जीने की इच्छा रखते हैं।

"यदि है सच्चा धर्म, आप भी सच्चे हैं (हे परमेश्वर)
तो मरने से पहले दे दें (स्वतंत्रता का सुन्दर) वर।[9]

स्वतंत्रता विषयक अन्य कविताओं में भारती की 'स्वतंत्रता का पौधा', 'स्वतंत्रता की प्यास', 'स्वतंत्रता देवी की स्तुति' आदि प्रमुख हैं। भारती भगिनि निवेदिता को गुरुमणि कहा करते थे तथा अपने आरंभिक चार ग्रन्थ भारती ने भगिनी निवेदिता को ही समर्पित किए। अपने प्रथम संग्रह के सर्पण में भारती लिखते हैं – "जिस प्रकार भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को अपना विश्वरूप दर्शाकर परमात्म स्वरूप को स्पष्ट किया था, उसी प्रकार मुझे भारत माता के सम्पूर्ण स्वरूप का दर्शन कराके देशभक्ति का प्रेरक उपदेश देकर अनुगृहित करनेवाले गुरुजी के चरण-कमलों में मैं अपने इस छोटे – से ग्रन्थ को समर्पित करता हूँ।"[10]

भारती निवेदिता को प्रेम का मंदिर कहते हैं, साथ ही अपने मन के अंधकार को नष्ट करनेवाले सूर्य के समान मानते हैं। भारती की कविताएँ राष्ट्रीय चेतना की ही अभिव्यक्ति है।

1920-21 के समय में भारती को लगा कि अपनी मृत्यु निकट है। उस समय लिखी कविताओं में मृत्यु तथा मरणोपरांत जीवन की चिंताएँ शामिल थीं। उसी वर्ष के अगस्त महीने के सायंकाल में वेड्रिपिकेनी के मंदिर गए। रोज़ की तरह मंदिर के हाथी को नारियल दिये। हाथी तो रूढ़कर खड़ा था उसने अपनी सूँड़ से भारती को मारा। कवैलै कन्नन नामक मित्र ने उनको बचा लिया था। लेकिन उनका स्वास्थ्य बिगड़ता गया और मात्र उनतालीस वर्ष की उम्र में सुब्रह्मण्य भारती 12 सितंबर ,1921 को परलोक सिधारे। मृत्यु के सौ साल बाद भी भारती साहित्य जगत् में ध्रुवतारा के समान चमकते हैं।

**संदर्भ ग्रंथ**


1. डॉ. नगेन्द्र – भारतीय साहित्य का इतिहास - पृ. सं - 11, प्रभात प्रकाशन, 1994

2.आचार्य शेषाद्रि और आचार्य रामेश्वर प्रसाद पांडेय – भारतियार कवितकल -पृ.सं - 187, भुवनवाणी ट्रस्ट, 1985

3. डॉ रामविलास शर्मा-भारतीय संस्कृति और हिन्दी प्रदेश भाग-2, पृ.स 12, किताब घर प्रकाशन, 1987

4. आचार्य शेषाद्रि और आचार्य रामेश्वर प्रसाद पांडेय – भारतियार कवितकल- पृ.सं 40-, भुवनवाणी ट्रस्ट, 1985

5.वही पृ.सं - 42

6. वही पृ.सं - 44

7. वही पृ.सं - 45
8. वही पृ.सं - 64
9. वही पृ.सं - 66
10. टी.एम.सी. रघुनाथन्: सुब्रह्मण्य भारती युग और चिंतन'-पृसं – 12, साहित्य अकादमी, 1997

◆असोसिएट प्रोफ़ेसर
यूनिवेर्सिटि कॉलेज
तिरुवनंतपुरम, केरल ।

7

# समाज में अनुपस्थिति का दंश झेलने को मज़बूर थर्ड जेंडर की गाथा: समकालीन हिंदी कहानियों के विशेष संदर्भ में

◆ डॉ.नीरजा वी. एस

समाज के हर पहलुओं को प्रस्तुत करने में साहित्य एक सशक्त माध्यम है। साहित्यिक रचनाएँ स्वानुभूति और सहानुभूति इन दोनों चीज़ों को प्रस्तुत करने में मुख्य भूमिका निभाती हैं। साहित्य में साहित्यकार समाज की सच्चाई पर विचार-विमर्श करने के साथ मानवीय संवेदनाओं को भी प्रकट करता है। हिंदी साहित्य अपने जन्म से लेकर वर्तमान तक अनेक विषयों को प्रवाहित कर रहा है। वर्तमान समय अस्मिता की लड़ाई का समय है और समसामयिकता को प्रस्तुत करना हिंदी साहित्य की विशेषता रही है। हाशिएकृत एवं उपेक्षित जनविभागों को वाणी देना साहित्य की महत्वपूर्ण विशेषता रही है। हिंदी साहित्य ने नारी विमर्श, दलित विमर्श, वृद्ध विमर्श, पारिस्थितिक विमर्श, आदिवासी विमर्श आदि नई-नई विचारधाराओं को संपन्न बनाने में और समाधान खोजने में अपनी अहम भूमिका निभाई है। ऐसा एक उपेक्षित समाज है तृतीय लिंगी या थर्ड जेंडर समाज। इस समाज पर भी हिंदी साहित्य ने अपनी दृष्टि डाली है।

भारतीय समाज की संरचना द्विलिंगी है। इसमें थर्ड जेंडर के प्रति स्वीकृति का भाव नहीं है। भारतीय समाज पितृसत्तात्मक होने के साथ लिंग पूजक भी है। यहाँ लिंग दो निर्धारित खाँचों में बाँट दिया गया है-स्त्री और पुरुष। यहाँ हमारा संपूर्ण समाज स्त्री एवं पुरुष इन्हीं दो वर्गों को समाज की धुरी मान बैठा है। समाज इन दोनों से पृथक एक ऐसे वर्ग को, जो न तो पूर्ण स्त्री है और न पूर्ण पुरुष स्वीकारने को तैयार नहीं है। समाज का अभिन्न हिस्सा होने के बावजूद भी इस वर्ग को अपने ही परिवार एवं समाज में कोई महत्व नहीं मिलता। इन्हें घृणा की दृष्टि से देखा जाता है और ये लोग समाज में अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहे हैं। यह तृतीय लिंगी समाज पौराणिक काल से हमारे साहित्य और समाज में उपस्थित है। परंतु सभ्य कहे जानेवाले समाज ने उन्हें कभी नहीं अपनाया। अपनाने के बदले, उनकी पीड़ा को समझने के बदले हमेशा उनका मज़ाक ही उठाया है। समाज से लेकर सरकार तक कोई इनकी ज़रूरत के बारे में नहीं सोचती। इसलिए जीवन-यापन केलिए भिक्षावृत्ति या वेश्यावृत्ति अपनाने केलिए ये लोग विवश होते हैं। वर्तमान समय में तृतीय लिंगी समाज अनेक समस्याओं तथा चुनौतियों से गुज़र रहा है। विशेष रूप से अपनी पहचान और आत्मसम्मान केलिए। परिवार और समाज से परित्यक्त यह विभाग अपने हक तथा अपने वजूद के लिए लड़ता रहता है।

थर्ड जेंडर का जीवन और उनका संघर्ष वर्तमान परिदृश्य में हिंदी कहानी का प्रमुख विषय बनता जा रहा है। इस समुदाय की समस्याओं की ओर समाज का ध्यान बहुत समय तक नहीं गया है। समकालीन हिंदी कहानीकारों ने इस समुदाय की

पीड़ा, अपमान, नरकीय जीवन, शोषण और तिरस्कार को यथार्थवादी धरातल पर प्रस्तुत किया है। इसके साथ उनकी वर्तमान स्थिति, उनका यातनामय जीवन, उनकी सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति, उनका राजनीति में प्रवेश, सामाजिक नज़रिया आदि बातों का विवेचन भी किया गया है। श्रीमती सविता शर्मा के शब्दों में "हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि यह किन्नर भी हमारी ही तरह इंसान है। केवल इनकी प्रजनन क्षमता ही उन्हें हमसे अलग करती है। किंतु दुनिया में ऐसे कई लोग हैं जो अपराजननता के शिकार हैं तो हम उनसे तो कभी इस प्रकार का दोहरा व्यवहार नहीं करते जैसा कि इनके साथ"।[1]

डॉ. पद्मा शर्मा की कहानी **'इज्जत के रहबर'** थर्ड जेंडर सोफिया के साहस और दिलेरी को व्यक्त करती है। सोफिया के दो परस्पर नितांत भिन्न रूप इस कहानी में दिखाई देते हैं। अपने पारंपरिक रूप में वह त्योहारों, शाद- ब्याह, बच्चों के जन्म और यहाँ तक कि रेल की सवारियों से मन माँगे पैसा लेती थी। इस कहानी का आरंभ सोफिया के नेतृत्व में श्री लाल के भाई के विवाह के बाद नेग लेने आई हिजड़ों की एक टोली से होता है। मन-माना नेग न मिलने पर सोफिया धमकी देने से भी नहीं चूकती।" देखो लालाजी जो सबसे लेते हैं वह आपसे भी लेंगे। यदि नहीं देखते दोगे तो दिखाते हैं नंगा नाच दिखाते हैं"[2] इज़्जत और सम्मान का जीवन जीने के हकदार सभी हैं। जब एक स्थानीय गुंडा द्वारा श्रीलाल की बेटी का बलात्कार होता है तब सोफिया उस गुंडे को पकड़कर उसका लिंग काट देती है। सोफिया उस गुंडे को उसके कुकर्म की सजा देना चाहती थी, जबकि इज़्ज़त खराब होने के डर से श्रीलाल इस घटना को छुपाकर निष्क्रिय बने रहते हैं। हिजड़ों में अन्याय और अत्याचार का मुकाबला करने की शक्ति का परिचायक है यह कहानी।

कुसुम अंसल के द्वारा रचित कहानी है **'ई मुर्दन का गाँव'।** इसमें लैंगिक विकृति से पीड़ित बलदेव वर्मा यानी बीलू के माध्यम से दिखाया गया है कि यदि हमारा समाज थर्ड जेंडर को सहज स्वीकार करे तो वह भी अपने कौशल से समाज में योगदान दे सकता है। बीलू अपने माँ-बाप के लिए बेटा है, लेकिन आत्मा से वह स्त्री है। उसे अपनी दोस्त नीलिमा के साथ गुड़ियों से खेलना अच्छा लगता है, लेकिन उसको इसकी इज़ाज़त नहीं। उसके शरीर में होनेवाले अनजाने परिवर्तनों को स्वीकार करने की क्षमता न उसके परिवार में है न समाज में। उसके साथ दमन, पाबंदी, ज़बरदस्ती एवं कठोर व्यवहार किये जाते हैं। थर्ड जेंडर होने के कारण वह अपने कम उम्र के बच्चों से दूर होकर अकेला हो जाता है। बीलू के माँ-बाप अपने बेटे के उज्ज्वल भविष्य केलिए उन्हें विदेश भेज देते हैं और आगे बढ़कर वह फैशन डिज़ाइनर बनता है। बचपन में तृतीय लिंगी होने के कारण उस पर लगी पाबंदियाँ उसे विद्रोही बना देती हैं और विदेश में मौसी के पास भेजकर उसका बचपन उस से छीन लिया जाता है। बीलू के माँ-बाप संपन्न होने के कारण उसे हिजड़ों की टोली में भेजने के बजाय हर माह उन्हें कुछ धन देता है। यदि कोई किन्नर निम्न वर्ग का निर्धन होता तो वह हिजड़ों की टोली में बधाई माँग रहा होता। हिजड़ों के क्षेत्र में भी उच्च और निम्न वर्ग का अंतर साफ छलकता है।संपन्नता ने बीलू को नरकीय जीवन से बचाकर एक कामयाब व्यक्तित्व बना दिया। लेकिन वह न ही मर्द था न ही औरत। यह पीड़ा अक्सर उसको तकलीफ देती थी।

सोम भारती द्वारा लिखित कहानी है **'गली आगे मुड़ती है"**। इस कहानी के केंद्र में एक किन्नर नील है जो प्रतिष्ठित फैशन डिज़ाइनर है। उसकी लिंगीय सच्चाई से समाज अनभिज्ञ है। वह भी नहीं चाहता है कि इस सच्चाई का लोगों को पता चले। लेकिन वास्तविकता को छुपाते-छुपाते वह मानसिक रूप से अस्त-व्यस्त हो जाता है। इस कहानी में नील अपनी

दैहिक विसंगति को छुपाकर अस्तित्व को बनाए रखने का प्रयास करता है। माता-पिता सामाजिक भय के कारण उसे अपनाने में असमर्थ है, जबकि रायना नामक दोस्त को नील की लैंगिकता की असलियत का पता चले जाने के बावजूद भी वह उसके साथ रहना स्वीकार करती है। नील अपनी प्रेमिका रायना से कहता है कि अपना रिश्ता केवल बिज़नेस का है जबकि नील के मन में रायना के प्रति प्रेम है। "जाओ रैना घर जाओ हमारा रिश्ता बिज़नेस का है। वही ठीक है किसी पूरे व्यक्ति से विवाह करना जो तुम्हें हर सुख दे सके "।[3] लेकिन रायना उससे भागने की जगह नील का सहचर बनकर यथार्थ से सामने करने की शक्ति उन्हें प्रदान करती है।

किरण सिंह की कहानी है **'संझा'**। चौगांवा के सबसे इज़्ज़तदार वैद्य महाराज के घर 8 वर्ष बाद जन्मी संतान है संझा। लेकिन वह किन्नर है। संझा के माता- पिता किन्नर के प्रति समाज की मानसिकता से वाकिफ है। इसलिए वे अपनी बेटी को दुनिया की नज़रों से बचाकर घर की चारदीवारी में रखते हैं। संझा 3 वर्ष की होने पर उसकी माँ की मृत्यु हो जाती है। एक किन्नर को सदा समाज की प्रताड़ना और हीन दृष्टि के सिवाय कुछ नहीं मिलता। इसलिए वैद्य जी अकेले संझा की देखरेख में जी जान से जुड़ जाते हैं। उन्होंने अपनी बेटी की लैंगिक अस्पष्टता को छुपाते हुए अपनी पहचान के लड़के से शादी करवा देते हैं। जब समाज को संझा की असलियत का पता चलता है तब संझा के ससुरलवाले उसके साथ निंदनीय व्यवहार करते हैं। वैद्यजी ने अपनी बेटी संझा को अच्छी परवरिश दी एवं उसे विचार संपन्न एवं आत्मनिर्भर बनाया। इसी सीख के सहारे संझा बाद में आई कठिनाइयों एवं समस्याओं का डटकर सामना करती है और विपरीत परिस्थितियों से निडर होकर संघर्ष करती है। एक अवसर पर वह अपनी बात इस प्रकार व्यक्त करती है। "न मैं तुम्हारे जैसी मर्द हूँ, न तुम्हारे जैसी औरत। मैं वह हूँ जिसमें पुरुष का पौरुष है और औरत का औरतपन। तुम मुझे मारना तो दूर अब मुझे छू भी नहीं सकते, क्योंकि मैं एक ज़रूरत बन चुकी हूँ। सारे चौगांवा ही नहीं आसपास के कस्बे शहर तक एक मैं ही हूँ जो तुम्हारी ज़िदगी बचा सकती हूँ। मैं जहाँ जाऊँगी मेरी इज़्ज़त होगी। तुम लोग अपनी सोचो"। [4]अंत में लोगों को उसको बाउदी की गद्दी पर बैठाने के लिए विवश होना पड़ता है। यह कहानी पूरे किन्नर वर्ग को अपने भाग्य से लड़ने के लिए प्रेरित करती है।

थर्ड जेंडर समाज वृद्धावस्था में भी अनेक परेशानियों से जूझता रहता है, क्योंकि जीवन के इस पड़ाव में कोई भी किन्नर घुंघरू बाँध नाच सकता है। कोई उसको बधाई या नेग के रूप में कुछ दे तो वह स्वीकार कर लेगा या भीख माँगकर गुज़रना पड़ता है। महेंद्र भीष्म की कहानी **'माई'** एक ऐसी किन्नर की कथा है। इसमें एक किन्नर स्त्री है, जो बूढ़ी हो चुकी है और कई दिनों से भूखी है। उसको लेखक खाना खिलाने का प्रयत्न करता है। इस कहानी के माध्यम से उन्होंने समाज के उस रूप का वर्णन किया है जो किन्नर के साथ अत्याचार करता है। सरकार उनको खाना नहीं दे पाती है जिसके कारण वे चोरी करने को मजबूर हो जाते हैं। इस कहानी की घटना स्वयं कहानीकार के साथ होती है। कहानीकार चारबाग रेलवे स्टेशन से किसी दूसरे शहर की यात्रा अपने परिवार के साथ करता है। कई दिनों से भूखा बूढ़ा किन्नर अपने पेट की आग बुझाने के लिए कहानीकार के बाग से चोरी कर लेता है। लेखक उसकी सच्चाई जानने का प्रयत्न करते हैं तो वह अपनी दशा व्यक्त करता है। लेखक उसकी दयनीय दशा देखकर अपने हाथों से उसे खाना खिलाता है और अपने परिवार के वरिष्ठ सदस्य की हैसियत से घर ले जाता है। लेखक बताते हैं कि किन्नर माई उनके परिवार के साथ पिछले पाँच वर्षों से रह रही है। लेखक के घर और परिचित लोग उन्हें माई कहकर संबोधित करते हैं और उनसे आशीष ग्रहण करते हैं।

विजेंद्र प्रताप सिंह की **'संकल्प'** नामक कहानी एक ऐसे थर्ड जेंडर की है, जो अपने आत्मबल के सहारे अपने भाई और पिता का सहारा बनती है। इसमें एक किन्नर की शारीरिक संरचना की समस्याओं को समझने और सुलझाने का प्रयास

किया गया है। एक किन्नर का सबसे बड़ा दुश्मन उसके खुद का शरीर ही होता है। केवल एक अंग अविकसित होने के कारण उसे बहुत सारी पीड़ाओं से गुज़रना पड़ता है। किन्नर भी अपना परिवार बसाना चाहते हैं। परंतु शारीरिक अपंगता उन्हें यह हक भी नहीं देती। इस कहानी का मुख्य पात्र माधुरी एक किन्नर है। माधुरी हिजड़ा के रूप में पैदा होती है। उसके सात वर्षीय होते-होते माँ मर जाती है और पिता मानसिक संतुलन खो देते हैं और एक नवजात बहन गोद में रह जाती है। ऐसे में माधुरी किन्नर समुदाय में सम्मिलित होकर मधुर बन जाती है और अपने परिवार के पालन-पोषण का भार वहन करती है। एक बार एक पुलिस द्वारा उसका बलात्कार हो जाता है। बलात्कार से पीड़ित माधुरी को डॉक्टर से मालूम पड़ता है कि ऑपरेशन के द्वारा वह स्त्री बन सकती है। इसके बाद माधुरी पैसे जुटाने में लग जाती है और ऑपरेशन करके एक पूर्ण स्त्री बनती है। उसके जीवन को अभिशप्त बनानेवाला हिजड़ा शब्द हमेशा के लिए उसके जीवन से समाप्त हो जाता है।

महेंद्र भीष्म की कहानी **'त्रासदी'** समाज में हिजड़ों की हीन स्थिति को दर्शाती है। हिजड़ों के प्रति कभी न खत्म होनेवाली नफरत को यह कहानी प्रस्तुत करती है। स्त्री और हिजड़ा दोनों का जीवन समाज में समान अपेक्षा और अत्याचार का शिकार होता है। रति और वंशी का सुखमय वैवाहिक जीवन उस समय ध्वस्त हो जाता है जब पति वंशी की दुर्घटना में अकस्मात् मृत्यु हो जाती है। रूपवती विधवा रति पर समाज के वहशी कामुक दरिंदों की नज़र पड़ती है। रति अति सुंदर है और जुड़वा पुत्री और एक पुत्र की माता है। पति के स्थान पर मिली नौकरी रोटी की समस्या को हलकर देती है। परंतु विधवा और अपूर्व सुंदरी होने के नाते वह गुंडो की नज़रों से बच नहीं पाती। सुंदरी नामक एक हिजड़ा बलात्कार से रति को बचाती है। रति को बचाते वक्त सुंदरी का चेहरा घायल और कुरूप हो जाता है। इससे उसकी आमदनी का एकमात्र ज़रिया नाच गाना खत्म हो जाता है। वह भीख माँगकर अपना गुज़ारा करने लगती है। ऐसे में रति उसे मानसिक रूप से सहारा देती है। इस घटना के बाद सुंदरी और रति में गहरी दोस्ती हो जाती है। सुंदरी से दोस्ती के कारण रति के पुत्र को अपनी माँ चरित्रहीन लगती है। वह सुंदरी को प्लेटफार्म के नीचे पटक देता है। आसपास के लोगों की हँसी- मज़ाक का पात्र बन जाने के भय से परेशान होकर रति के पुत्र ने सुंदरी की हत्या कर दी। यह त्रासद अंत सुंदरी का मात्र नहीं है बल्कि हमारे मूल्य और मानवता का भी है। हमारे समाज थर्ड जेंडर की उपस्थिति को स्वीकार कर पाने में असमर्थ है।

विवेच्य थर्ड जेंडर आधारित कहानियाँ उनके जीवन के विभिन्न पहलुओं को चित्रित करने के साथ-साथ समाज का व्यवहार और संकीर्ण मानसिकता से भी परिचित कराती हैं। इन कहानियों से पता चलता है कि समाज के लोग इन्हें विचित्र प्राणी की तरह देखते हैं। इन्हें व्यंगत्मक हँसी और निगाहों से अपमानित करते हैं। समाज में तृतीय लिंगी लोगों के प्रति नकारात्मक भाव अधिक देखने को मिलते हैं। यदि लैंगिक अपंगता के कारण प्रजनन की क्षमता नहीं रहती है तो उस स्त्री और पुरुष को समाज में कोई अस्तित्व नहीं होगा। शारीरिक एवं मानसिक रूप से स्वस्थ होने के बावजूद भी उन्हें हाशियेकृत जीवन जीना ही पड़ता है।

**संदर्भ ग्रन्थ सूची**

1.थर्ड जेंडर अस्मिता और संघर्ष, सं- डॉ विजेंद्र प्रतापसिंह, डॉ रविकुमार गोड

पृ सं 126,अमन प्रकाशन, कानपुर, वर्ष-2020

2.थर्डजेंडर हिंदी कहानियाँ, संपादक- एम फिरोज़खान,

पृ. 92, अनुसंधान पब्लिशेर्स एवं डिस्टिब्यूरेर्स, कानपुर

3. वही, पृ 85

4. वही, पृ 79

◆सहायक आचार्या, हिंदी विभाग

सरकारी कॉलेज, कोडनचेरी

कालिकिट,केरल-673580

संपर्क 9496906607

ईमेल: drneerajasajimathew@gmail.com

# हज़ारीप्रसाद द्विवेदी के निबंधों में 'फूल' भारतीय संस्कृति और जीवन के प्रतीक

◆सुजाता कुमारी

भारतीय संस्कृति में फूलों का महत्व अत्यधिक गहरा और विविध है । फूल केवल सौंदर्य या सजावट का साधन नहीं होते, बल्कि वे धार्मिक, सांस्कृतिक और पारंपरिक जीवन का अभिन्न हिस्सा भी हैं । हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ने अपने निबंधों में फूल को विशेष स्थान दिया है । उन्होंने फूलों के माध्यम से भारतीय संस्कृति, इतिहास, परंपरा जैसे तत्वों का प्रतीकात्मक और दार्शनिक रूप से विश्लेषण किया है। फूलों को आधार बनाकर उन्होंने भारतीय समाज व संस्कृति के विभिन्न कालखंडों और सांस्कृतिक परिवर्तनों को अपने निबंधों में दर्शाया है । 'अशोक के फूल' और 'शिरीष के फूल' निबंधों में इन दोनों फूलों को प्रतीक बनाकर उन्होंने भारतीय संस्कृति के विभिन्न रूपों को व्याख्यात किया है ।

कहा जाता है कि कंदर्प देवता ने लाखों मनोहर फूलों में से पाँच फूलों को अपने तूणीर में स्थान देने योग्य समझा था और इनमें से अशोक का फूल एक है। हज़ारीप्रसाद द्विवेदी आरंभिक दौर में अशोक के फूल के महत्व का स्मरण करते हुए उसकी गौरवशाली परंपरा को इस निबंध में प्रतिपादित करते हैं। उनका मानना है कि जिस गौरव के साथ इसकी शुरुआत हुई थी वह काल-दर-काल धूमिल होती गयी। समय-समय पर भारत में विभिन्न जातियों और समुदायों का आगमन होता रहा, कई जातियाँ यहीं रच-बस गईं और कई किन्हीं कारणों से अपने देश को लौट गईं । कई विद्वान ऐसा मानते हैं कि भारतीय संस्कृति के सृजनकर्त्ता आर्य हैं। हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ने इस तथ्य को खारिज़ करते हुए लिखा है कि – "विचित्र देश है यह ! असुर आये, आर्य आये, शक आये, हूण आये, नाग आये, यक्ष आये, गंधर्व आये – न जाने कितनी मानव जातियाँ यहाँ आयीं और आज के भारतवर्ष के बनाने में अपना हाथ लगा गयीं । जिसे हम हिन्दू रीति-नीति कहते हैं, वह अनेक आर्य और आर्येत्तर उपादानों का अद्‌भुत मिश्रण है ।"(1)

हजारीप्रसाद द्विवेदी यह सोचते हैं कि क्या अशोक के फूल गन्धर्वों की देन है । क्योंकि एक निश्चित काल के बाद इन फूलों की चर्चा भारतीय साहित्य में नहीं मिलती । मूलतः अशोक के फूल भारतीय संस्कृति के परिचायक हैं । कालिदास ने संस्कृति के इस योद्धा का उल्लेख कई स्थानों पर किया है ।उसे नववधू के समान सुकुमार माना जाता था। लेकिन भारत में अनेक आक्रमणकारियों के प्रवेश के कारण यह फूल मुरझा गया । इनके आगमन से भारतीय संस्कृति के लगभग सभी तत्वों में बदलाव हो गए। यथा- रहन-सहन, भाषा, खान-पान आदि तत्वों में उन्होंने बदलाव किए । जिनकी सत्ता होती है वह अपने अनुकूल संस्कृति को ढालना चाहते हैं। इस्लामिक संस्कृति के आगमन के पश्चात उन्होंने यही नीति भारतीय संस्कृति के संबंध में अपनायी। इस संदर्भ को व्याख्यायित करते हुए हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा-"फिर एकाएक मुसलमानी सल्तनत की प्रतिष्ठा के साथ-ही-साथ यह मनोहर पुष्प साहित्य के सिंहासन से चुपचाप उतार दिया गया । नाम तो लोग बाद में भी लेते थे, पर उसी प्रकार जिस प्रकार बुद्ध, विक्रमादित्य का। अशोक को जो सम्मान कालिदास से मिला वह अपूर्व था।"(2) उक्त कथन से स्पष्ट होता है कि कालिदास के समय में अशोक अर्थात् भारतीय संस्कृति अपने स्वर्ण युग में थी। लेकिन आक्रान्ताओं ने आकर पहले यहाँ की भाषा पर अपनी भाषा को थोपा और फिर शनैः शनैः इस सम्पूर्ण संस्कृति पर अपनी संस्कृति को आरोपित करने की कोशिश की

और बहुत हद तक वे इसमें सफल भी बने। यही कारण है कि इस काल में अशोक को विस्मृत किया गया । हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ने इस पर खेद प्रकट करते हुए लिखा है कि – "भुलाया गया है अशोक ! मेरा मन उमड़-घुमड़कर भारतीय रस-साधना के पिछले हज़ारों वर्षों पर बरस जाना चाहता है । क्या यह मनोहर पुष्प भुलाने की चीज़ थी ? सहृदयता क्या लुप्त हो गयी थी ? कविता क्या सो गयी थी ? ना, मेरा मन यह सब मानने को तैयार नहीं है । जले पर नमक तो यह है कि एक तरंगायित पत्रवाले निफूले पेड़ को सारे उत्तर भारत में अशोक कहा जाने लगा । याद भी किया तो अपमान करके।"(3) द्विवेदी जी यह चिंता प्रकट करते हैं कि हज़ारों वर्षों में इतने कवि हुए किसी ने इसको याद क्यों नहीं की । साथ ही एक प्रश्नचिह्न भी लगाते हैं कि लिखा तो गया होगा, लेकिन सत्ताधारियों ने उस रचना को उजागर न होने दिया होगा । सत्ता जिनकी होती है साहित्य पर एकाधिकार भी उन्हीं का रहता है । अशोक अर्थात् भारतीय संस्कृति को याद भी की तो उसे अपमानित करके ही की है। इसीलिए उन्होंने लिखा है कि – "कहते हैं, दुनिया बड़ी भुलक्कड़ है ! केवल उतनी ही याद रखती है जितने से उसका स्वार्थ साधता है । बाकी को फेंककर आगे बढ़ जाती है । शायद अशोक से उसका स्वार्थ नहीं साधा। क्यों उसे वह याद रखती ? सारा संसार स्वार्थ का अखाड़ा ही तो है ।"(4) उक्त कथन के माध्यम से उन्होंने समाज के कड़वे सच को उजागर किया है। मनुष्य की यह प्रवृत्ति है कि वह उसे ही याद रखता है जिससे उसका स्वार्थ जुड़ा हो, आधुनिक मनुष्यों के संदर्भ में यह पंक्ति चरितार्थ होती है ।

हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ने यह संकेत किया है कि भारत में अनेकों आक्रमणकारी आये, किन्तु यह देश वहीं का वहीं अब तक खड़ा है । इस देश के लोगों में जिजीविषा है, वे जीवट हैं, किसी भी परिस्थिति से घबराते नहीं हैं, बल्कि उठ खड़े होते हैं। उन्होंने अशोक का सहारा लेते हुए यह लिखा है कि – "मगर उदास होना भी बेकार है । अशोक आज भी उसी मौज में है, जिसमें आज से दो हज़ार वर्ष पहले था। कहीं भी तो कुछ नहीं बिगड़ा है, कुछ भी तो नहीं बदला है । बदली है मनुष्य की मनोवृत्ति ।"(5) मनुष्य संघर्षशील प्राणी है । उसने इन्हीं संघर्षों से नयी शक्ति पायी है । वर्तमान भारतीय समाज का रूप कितने ग्रहण और त्याग के बाद का रूप है । देश और जाति की शुद्धता से बढ़कर द्विवेदी ने मनुष्य के इस संघर्ष और जिजीविषा को माध्यम बनाया है जिसके केंद्र में है – अशोक के फूल ।

हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ने अपने फूल संबंधित निबंधों में उसे किसी न किसी ऐतिहासिक चरित्र, परंपरा वाहक या ऐतिहासिक रूप में प्रस्तुत किया है । 'शिरीष के फूल' नामक निबंध को लिखने के बारे में वे बताते हैं कि - "जहाँ बैठ के यह लेख लिख रहा हूँ उसके आगे-पीछे, दाएँ-बाएँ, शिरीष के अनेक पेड़ हैं । जेठ की जलती धूप में, जबकि धरित्री निर्धूम अग्निकुंड बनी हुई थी, शिरीष नीचे से ऊपर तक फूलों से लद गया था । कम फूल इस प्रकार की गरमी में फूल सकने की हिम्मत करते हैं । कर्णिकार और आरग्वध (अमलतास) की बात मैं भूल नहीं रहा हूँ । वे भी आस-पास बहुत हैं । लेकिन शिरीष के साथ आरग्वध की तुलना नहीं की जा सकती । वह पंद्रह-बीस दिन के लिए फूलता है, वसंत ऋतु के पलाश की भाँति ।"(6) शिरीष के फूल लंबे समय तक धूप, छाँव, वर्षा, शरद में लहलहाते रहते हैं। वे बसंत में उगते हैं और आषाढ़ तक प्रकृति में मस्त बने रहते हैं । कभी-कभी तो भादों मास में भी यह खिलखिला उठता है। यह फूल मनुष्यों को सीखाता है कि – "जब उमस से प्राण उबलता रहता है और लू से हृदय सूखता रहता है, एकमात्र शिरीष कालजयी अवधूत की भाँति जीवन की अजेयता का मन्त्र-प्रचार करता रहता है।"(7) शिरीष को प्रतीक

बनाकर यहाँ द्विवेदी जी ने मनुष्यों को ही संबोधित किया है कि उसे अवधूत की तरह अजेय बनना चाहिए।

शिरीष मात्र एक फूल नहीं है बल्कि यह पुराने भारत का रईस है । जिन मंगल-जनक वृक्षों को वृक्ष-वाटिका की चहारदीवारी के पास लगाया जाता है उनमें एक शिरीष भी है । शिरीष के फल नये फूल आने पर भी उसी स्थान पर जमे रहते हैं। ठीक इसी प्रकार कुछ विशिष्ट लोग अपने पद पर आसीन रहते हैं जब तक उन्हें धकियाकर भगाया नहीं जाता। मनुष्य को यह समझना चाहिए कि एक समय बाद खुद उस स्थान से विमुक्त हो जाए जब नये लोगों का आगमन उस स्थान पर हो जाए। मनुष्यों को अपनी हर स्थिति के लिए तैयार रहना चाहिए। क्योंकि एक-न-एक दिन उसे मरना ही है। और यह जगत सत्य है। हज़ारीप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं कि- "मैं सोचता हूँ कि पुराने की यह अधिकार-लिप्सा क्यों नहीं समय रहते सावधान हो जताई ? जरा और मृत्यु, ये दोनों ही जगत् के अतिपरिचित और अति प्रामाणिक सत्य हैं ।"(8)

हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ने वर्तमान परिस्थिति पर सवाल उठाते हुए शिरीष का माध्यम लेकर बताया है कि – "शिरीष तरु सचमुच पक्के अवधूत की भाँति मेरे मन में ऐसी तरंगें जगा देता है जो ऊपर की ओर उठती रहती हैं। इस चिलकती धूप में इतना सरस वह कैसे बना रहता है ? क्या ये बाह्य परिवर्तन- धूप, वर्षा, आँधी, लू- अपने-आपमें सत्य नहीं हैं ? हमारे देश के ऊपर से जो यह मार-काट, अग्निदाह, लूट-पाट, खून-खच्चर का बवंडर बह गया है, उसके भीतर भी क्या स्थिर रहा जा सकता है ? शिरीष रह सका है । अपने देश का एक बूढ़ा रह सका था। क्यों मेरा मन पूछता है कि ऐसा क्यों सम्भव हुआ? क्योंकि शिरीष भी अवधूत है । शिरीष वायुमण्डल से रस खींचकर इतना कोमल और इतना कठोर है । गाँधी भी वायुमण्डल से रस खींचकर इतना कोमल और इतना कठोर हो सका था। मैं जब-जब शिरीष की ओर देखता हूँ तब तब हूक उठती- हाय, वह अवधूत आज कहाँ है !"(9) उक्त कथन से स्पष्ट होता है कि हज़ारीप्रसाद द्विवेदी समाज की विकट परिस्थितियों और ऐतिहासिक संघर्षों के बावजूद स्थिरता और आंतरिक शक्ति की संभावना पर विश्वास करते हैं। शिरीष की स्थिरता इस बात का प्रतीक है कि इन परिस्थितियों के बावजूद, आंतरिक शक्ति और स्थिरता बनाए रखी जा सकती है। द्विवेदी जी यह मानते हैं कि भारत देश में हिंसा का जो माहौल था क्या उस माहौल में स्थिर होकर रहा जा सकता है ? लेकिन महात्मा गाँधी इस परिस्थिति में भी अड़िग रहे । क्योंकि वह भी शिरीष की तरह अवधूत थे ।

हज़ारीप्रसाद द्विवेदी के निबंधों में फूलों की भूमिका विशेष महत्व रखती है । उनके लेखन में फूल न केवल भारतीय संस्कृति के प्रतीक होते हैं, बल्कि वे समय और परिस्थितियों के बदलावों को दर्शाते हैं । द्विवेदी जी ने अशोक के फूल को भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधि मानते हुए उसकी भव्यता और ऐतिहासिक महत्व की ओर इशारा किया है । उनका यह भी मानना है कि बाहरी आक्रमणों और सांस्कृतिक परिवर्तनों के बावजूद अशोक के फूल की स्वाभाविक सुंदरता और उसका महत्व स्थिर रहना चाहिए था, लेकिन राजनीतिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों ने उसकी पहचान को धूमिल कर दिया ।

द्विवेदी जी ने शिरीष के फूल के माध्यम से भी जीवन की स्थिरता और संघर्षशीलता का चित्रण किया है। शिरीष को एक ऐसा प्रतीक मानते हुए, जो विभिन्न मौसमों और बाहरी परिस्तिथियों के बावजूद स्थिर रहता है, उन्होंने मनुष्यों को जीवन में कठिनाइयों के बावजूद अड़िग रहने की प्रेरणा दी है । उन्होंने यह भी दिखाया है कि एक समय के बाद स्थिरता और पद की महत्वाकांक्षा किस तरह निराधार हो सकती है, और इसे समय

पर समझना आवश्यक है।

इस प्रकार, हज़ारीप्रसाद द्विवेदी के निबंधों में फूल केवल प्राकृतिक सुंदरता का प्रतीक नहीं हैं, बल्कि वे भारतीय संस्कृति, ऐतिहासिक परिवर्तन और व्यक्तिगत संघर्षों की गहराई को उजागर करने के माध्यम भी हैं। उनके द्वारा प्रस्तुत फूलों की छवि भारतीय समाज की स्थिरता, संघर्षशीलता, और परिवर्तनशीलता का प्रतीक बन जाती है।

**संदर्भ :**


1. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली, संपादक – मुकुंद द्विवेदी, भाग-9, चौथा संस्करण, प्रकाशन वर्ष - 2013,राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ सं – 20
2. वही, पृ सं – 20
3. वही, पृ सं – 20
4. वही, पृ सं – 23
5. वही, पृ सं – 23
6. वही, पृ सं – 25
7. वही, पृ सं – 25-26
8. वही, पृ सं – 26
9. वही, पृ सं – 28



◆शोधार्थी,
पीएच. डी. (हिन्दी)
तमिलनाडु केन्द्रीय विश्वविद्यालय,
तिरुवारुर, 610005
मोबाईल नंबर- 9540472864


# वीरेन्द्रजैन के उपन्यास 'डूब' में चित्रित विस्थापन की विभीषिका

**◆सुधा जे**


'विस्थापन' को अंग्रेज़ी शब्द 'Displacement' के पर्याय के रूप में जाना जाता है तथा हिंदी शब्द कोश में 'विस्थापन' का अर्थ 'किसी स्थान पर बसे हुए लोगों को वहाँ से बलपूर्वक हटा देना' दिया गया है।

स्वतंत्रता के बाद सरकार द्वारा विकास के नाम पर बहुत सारी परियोजनाएँ लायी गयीं। भारत में विकास की परियोजनाओं से लोग विस्थापित हुए हैं। उन परियोजनाओं में उत्तर प्रदेश तथा मध्यप्रदेश की बेतवा नदी के राजघाट में बने बाँध हीराकुंड, नागार्जुन सागर, भाखड़ा नांगल और दामोदर घाटी मुख्य हैं। बाँध परियोजना गाँव के किसान और आदिवासी समाज के लिए विस्थापन की दर्दनाक त्रासदी भी लेकर आयी। वीरेन्द्र जैन ने इस कड़वे सच का दर्शन अपने उपन्यास 'डूब' में करवाया है।

वीरेन्द्रजैन एक सामाजिक उपन्यासकार हैं। उनका दृष्टिकोण यथार्थवादी रहा है और यथार्थवादी दृष्टिकोण का परिचय देते हुए उन्होंने अपने उपन्यासों में समाज और उसकी, बहुविध समस्याओं का अंकन किया है। 'डूब' उपन्यास में दलित और निम्न लोगों के जीवन के सूक्ष्म अध्ययन से ही उनके विकास पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है, जिसमें दलित जीवन, इतिहास, दलित शोषण, विद्रोह, क्रांति, राजनीति एवं उनके प्रतिरोधों पर प्रकाश डाला गया है।

यह उपन्यास स्वतंत्र्योत्तर भारत में अपनायी गयी विकास योजनाओं की विसंगतियों और उनसे उत्पन्न विस्थापन की समस्या को केन्द्र बनाकर लिखा गया है। लेखक ने मध्यप्रदेश के पिछड़े अंचल में बड़े बाँधों द्वारा विकास के नाम पर किये विनाश की कथा को एक राष्ट्रीय रूप प्रदान किया है।

उपन्यासकार ने बाँध निर्माण से उठनेवाली समस्या, डूब जानेवाली मनुष्यता, संस्कृति, सभ्यता, इतिहास, भौगोलिक स्थिति, पशु-पक्षी,

पेड़-पौधे और वहाँ रहनेवाले मनुष्यों की त्रासदी का भयावह चित्र खींचा है। इनमें न जाने कितने व्यक्तियों को पानी में डूबना पड़ता है और कितने बाँध-निर्माण की वजह से यातनाओं और भूख के पारावर में खतम हो जाते हैं, इसका कोई हिसाब सरकार के पास नहीं होता, क्योंकि सरकार डूबे क्षेत्र को कुछ साल पहले ही डूबा हुआ मानकर सो जाती है। वहाँ रहनेवाले लोगों को जीवित मनुष्य मानना छोड़ देती है।

वीरेन्द्र जैन ने अपने इस उपन्यास द्वारा पिछड़े, दलित एवं आदिवासी क्षेत्रों में विकास के नाम पर हो रहे अन्याय के विरुद्ध आक्रोश किया है। यह बताना चाहते हैं कि मनुष्य को भूलकर मनुष्य के लाभ के लिए किया जानेवाला हर काम मनुष्य विरोधी है।

'डूब' उपन्यास की मुख्य कथा बेतवा नदी पर बनाये गये राजघाट बाँध से जुड़ी है। लेखक ने चंदेरी कस्बे के समीप के लडेई गाँव को उपन्यास का केन्द्रबिंदु बनाया है। गाँव, स्थान और पात्रों के नाम प्रतीकात्मक हैं। महाराणी लक्ष्मीबाई के लड़ाके इसी स्थान पर आकर बसने के कारण गुरीला गाँव का नाम लडैई बन गया था। लेखक कहते हैं कि "गाँव ही नायक है इसलिए गाँव के ज़रिए खोलना शुरू करते हैं। लडैई गाँव की जातिगत बुनावट यूँ है- बनिया, अहीर, ठाकुर, तेली, खवारत, बढ़ई, धोबी, बस्तोर, चमार, बरेदी, दीमर आदि। हिंदुओं, मुसलमानों और जैनियों से बने गाँव की अर्थ व्यवस्था के आधार हैं- खेती, सूदखोरी, पशुपालन। लडैई नदी-पहाड़ से चौतरफा घिरा गाँव है। ललितपुर में अभी भी राजघाट परियोजना चल रही है। जैसे – विकास बनाम विनाश के विवाद में घिरी टिहरी या नर्मदा परियोजना।"[1]

उपन्यास में नदी पर बाँध बनाने के लिए वहाँ के लोगों की भूमि का अधिग्रहण सरकार द्वारा कर लिया जाता है। तब वहाँ के लोग गाँव छोड़कर जाना चाहते हैं। गाँव को विस्थापित कर, मनुष्य को मारकर विकास योजनाएँ बनायी जाती हैं। विस्थापित होते गाँव का असर आदिवासियों और दलितों के समाज पर भी पड़ता है। लालची और स्वार्थी ज़मीन्दारों की निगाह अब आदिवासियों की ज़मीन पर टिकी हुई है। विस्थापित होते समाज की पीड़ा और त्रासदी को वीरेन्द्रजैन ने 'डूब' उपन्यास में बखूबी प्रस्तुत किया है। उनकी दीन-हीन स्थिति को लेखक बड़े प्रभाव के साथ उभारा है। क्योंकि इसी क्षेत्र का सिरसौद गाँव लेखक की जन्मभूमि है। इसलिए उन्होंने इस यथार्थ को दिल की गहराई से प्रस्तुत किया है।

झूठी राजनीति को भी उजागर किया गया है। 'डूब' में दलित गोराबाई एक ऐसी स्त्री पात्र है, जिसका ध्यान देश में चलनेवाली राजनीति की ओर है। वह अशिक्षित होकर भी पाँच साल बाद पहले वोट माँगने आनेवाली महाराणी की बात स्मरण करती है। गोराबाई कहती है कि "अब भी महाराणी वोट माँगने के लिए आएँगी और कहेंगी कि अब यह बाँध ज़रूर बनेगा और तुम्हारा गाँव भी नहीं डूबेगा। सो तुम हमें वोट ज़रूर ही देना।"[2] यहाँ झूठी राजनीति के प्रति जनता का बोध देखने को मिलता है।

इस उपन्यास में विस्थापित गाँव के विस्थापित स्कूल का, वहाँ शिक्षा-दीक्षा हासिल करनेवाले छात्रों का, विस्थापित होनेवाले स्कूल के गुणवंत अध्यापकों का, विस्थापित लोगों की मनस्थिति का, राजघाट बाँध परियोजना के दुष्परिणामों का और डूब क्षेत्र में आनेवाले लोगों द्वारा सरकारी नीति को कोसने का चित्रण लेखक ने सूक्ष्मता के साथ किया है। विस्थापन की पीड़ा से पीड़ित लडैई गाँव के लोग मास्साब से कहते हैं "कैसा बाँध है ये? पशुबलि लोग? धरती माता की बलि लोग? धोखा है ये। जो हमें ली लेगा वह औरों को भी ली लेगा। वह फिर किसी को खुशहाल नहीं

करेगा। बाँध आदमी का माँस चखा दे तो वह आदमखोर हो जाता है। नरभक्षी हो जाता है। वह और बाँध को...."[3] ग्रामीण इस बाँध को नरभक्षक मानते हैं। सरकार की इस प्रवृत्ति पर कठोर व्यंग्य करते है। लेखक यह भी विशद करते हैं कि इस क्षेत्र में आनेवालों का इस बाँध परियोजना से लाभ होता है और डूब क्षेत्रों में आनेवालों का बड़ा घाटा होता है। विस्थापन से पीड़ित लोग चुनावी प्रक्रिया का बहिष्कार करते हैं। लेखक विस्थापन की पीड़ा को गहराई से यहाँ प्रस्तुत करते हैं।

भाषा-शैली की दृष्टि से 'डूब' उपन्यास एक नया मुहावरा लगता है। इसमें लेखक ने अनेक भाषिक प्रयोग करते हैं। गिरिराज किशोर के मतानुसार "डूब उपन्यास उन व्यक्तियों का है, जो या तो प्रवृत्तियों का प्रतीक है, या संघर्ष के मायने हैं।"[4] यहाँ 'डूब' शब्द बाँध परियोजना के कारण जलमय हो जानेवाले क्षेत्र केलिए प्रयुक्त हुआ है। डूब क्षेत्र में डूबनेवाले गाँवों के विस्थापन की समस्या पर आधारित डूब एक प्रतीक लगता है।

'डूब' उपन्यास में लेखक ने गरीब किसानों की, शोषितों-पीड़ितों की व्यथा कथा को चित्रित किया है। इस उपन्यास का रामदुलारे स्वयं वीरेन्द्रजैन हैं। राजघाट बाँध परियोजना के अंतर्गत वीरेन्द्र जैन की मातृभूमि लडैई गाँव का समावेश होता है। बाँध के डूब क्षेत्र में आनेवालों के विस्थापन की पीड़ा को लेखक ने यहाँ बड़ी आत्मीयता के साथ चित्रांकित किया है। 'डूब' उपन्यास का पूरा परिवेश वीरेन्द्र जैन के जीवन से आबद्ध है। यह उपन्यास भारतीय ग्रामांचलों की कथा-व्यथा, दुख-दर्द, उत्सव-पर्व, जीवन के चढ़ाव-उतार आदि का प्रतिनिधित्व करता है। यह उपन्यास भारतीय दलित, किसान, सर्वहारा, मज़दूर आदि के शोषण की त्रासदी है। इसमें विकास के नाम पर होनेवाले किसानों के दमन की व्यथा को उकेरा गया है।

निष्कर्ष में वीरेन्द्रजैन ने समाज में व्याप्त विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक सांस्कृतिक और साहित्यिक जीवन से जुड़ी हुई समस्याओं, उन समस्याओं के कारणों, सामाजिक विकास में आनेवाली बाधाओं को देखा है। उन्होंने सरकार, सामाजिक-धार्मिक संगठनों और समाज के लोगों का चित्रण किया है। दलित एवं अन्य पिछड़े लोगों के मन में यह प्रेरणादायक है। बाँध-निर्माण से होनेवाले मद्यविनाश का बड़ा ही जीवंत चित्रण किया गया है तथा आज़ादी के बाद से देश में चली आ रही तमाम विकास-योजनाओं की प्रगति पर निशान लगाया गया है। लेखक ने इसके माध्यम से देश में बाँध संबंधी तमाम परियोजनाओं की लाभ-हानि का चित्रण हमारे सामने रख दिया है।

धार्मिक, शैक्षिक और राजनीतिक क्षेत्रों में उनकी चेतना नज़र आती हैं। चेतना के लिए सदा शिक्षा के रास्ते पर चलते रहने से ही जीवन के तमाम क्षेत्र में दलितों की उपस्थिति दर्ज हो सकती है।

**संदर्भ :**


1. वीरेन्द्रजैन का साहित्य, सं.मनोहर लाल, पृ.सं 111, वाणी प्रकाशन, दिल्ली
2. वही पृ.सं.154
3. वहीं पृ.सं.108
4. वही,भूमिका



◆शोधार्थी

सरकारी महिला महाविद्यालय,

तिरुवनंतपुरम

मो.9946973391

# उत्तराखण्ड का जाड़-भोटिया समुदाय: एक सामाजिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन

◆उदय प्रकाश

**सारांश**

विश्व के विभिन्न भागों में रहनेवाला जनजातीय समाज जैसे-जैसे वैश्वीकरण के इस दौर में विकास की मुख्य धारा से जुड़ रहा है वैसे-वैसे धीरे-धीरे वह अपनी पारम्परिक जीवन पद्धति, रीति-रिवाज़ों एवं लोक संस्कृति से दूर होता जा रहा है। कुछ जनसमुदाय ऐसे भी हैं जो विकास की मुख्यधारा से जुड़ने के बावजूद भी अपनी लोकसंस्कृति को जीवित रखे हुए हैं। उत्तराखण्ड के उत्तर हिमालयी क्षेत्र में भारत-तिब्बत सीमा पर निवास करनेवाली भोटिया जनजाति उन्हीं जनजातियों में से एक है। भोटिया जनजाति की ही एक शाखा जाड़ उत्तरकाशी के नेलांग-जादोंग क्षेत्र में रहती है। विकास की मुख्य धारा से जुड़ने के बावजूद भी वह अपनी पारम्परिक लोक संस्कृति को संजोयी हुई है। जाड़-भोटिया समुदाय में बौद्ध-हिन्दू धर्म संस्कृतियों का मिला-जुला स्वरूप देखने को मिलता है, जो उसकी विशिष्ट पहचान है।

**बीज शब्द**- नेलांग, जादोंग, बगोरी, जाड़, थोलिंग, च्छोंग्सा।

**प्रस्तावना**

उत्तर हिमालयी क्षेत्र में भारत-तिब्बत सीमा पर निवास करनेवाली मंगेली, तिब्बती एवं बर्मी मिश्रित भाषा बोलनेवाली विभिन्न जनजातियों में से उत्तराखण्ड के उत्तरकाशी जनपद के उत्तरी सीमान्त क्षेत्र में निवास करनेवाली जाड़-भोटिया जनजाति की अपनी अलग पहचान है। यह जनजाति भारत-तिब्बत सीमा के निकट उच्च हिमालयी क्षेत्र में निवास करती है।[1] वैश्वीकरण के इस दौर में जहाँ हिमालयी क्षेत्र में निवास करनेवाले विभिन्न समुदायों में पारम्परिक संस्कृति विलुप्त हो रही है वहीं उत्तरकाशी जनपद की एकमात्र जनजाति जाड़-भोटिया यहाँ की विषम भौगोलिक परिस्थितियों में भी अपनी सामाजिक व्यवस्था एवं संस्कृति को संजोयी हुई है।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत अध्ययन के लिए प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों का प्रयोग किया गया है। प्राथमिक आँकड़े उत्तरदाताओं से बात करके एकत्र किये गये हैं, जबकि द्वितीयक आँकड़े पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं, प्रकाशित एवं अप्रकाशित शोध ग्रंथों से संकलित किये गये हैं।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य उत्तराखण्ड की जाड़-भोटिया जनजाति के सामाजिक सांस्कृतिक पहलुओं का अध्ययन करना है।

**जाड़-भोटिया :** 'भोटिया' शब्द की उत्पति 'भोट'से हुई है। उत्तराखण्ड की तिब्बत (चीन) तथा नेपाल सीमा से जुड़े क्षेत्र को भोट क्षेत्र कहा जाता है।[2] वह भूभाग जिसमें यह जनजाति निवास करती है, कभी तिब्बत की राजसत्ता भोट के अधीन था। इसी कारण इस भूभाग को भोट कह दिया गया और इसमें निवास करनेवाली जाति को 'भोटिया'कहा गया।[3] भोटिया जनजाति शौका, जोहारी, तोलछा, मारछा एवं जाड़ वर्ग में उपविभाजित है। भोट शब्द का प्रयोग जिस भू-भाग के लिए किया गया, वह जनपद पिथौरागढ़ के जौहार एवं दारमा परगना का तिब्बत की सीमा तक फैला भाग तथा गढ़वाल के उत्तरकाशी जनपद में जेलू-खागा दर्रे के पास जाड़ गंगा व भागीरथी की घाटी और चमोली जिले के माणा दर्रे के नीचे स्थित है, का भूभाग है।[4]

उत्तरकाशी में निवास करनेवाली भोटिया जनजाति को स्थानीय लोग 'जाड़'कहकर सम्बोधित करते हैं। 'जाड़ गंगा'के उद्गम स्थल के निकट स्थित

नेलांग एवं जादोंग में निवास करने के कारण इन्हें 'जाड़'नाम से सम्बोधित किया जाता है।

शिवप्रसाद डबराल नेलंग के जाड़ को भिल्ल-किरात जाति का अवशेष मानते हैं।[5] डबराल के अनुसार ये लोग प्राचीन किरात जाति के अवशेष हैं जिनमें तिब्बती रक्त का मिश्रण है।[6] वास्तव में मंगोल मुख-मुद्रावाली भिल्ल-किरात जाति लगभग तीन हज़ार वर्षों से हिमालय प्रदेश में जीवन-यापन कर रही है।[7] एटकिन्सन, शेरिंग तथा राहुल सांकृत्यायन तीनों विद्वान नेलांग के जाड़ों को किरातों का वंशज मानते हैं। भागीरथी का नाम 'किराती' होना भी इस मत की पुष्टि करता है।[8] किरात जाति घुमन्तू थी।

तिब्बती समाज एवं व्यापारी वर्ग नेलांग तथा जादोंग में बसे लोगों तथा लंका तक की सीमा को च्छोंग्सा कहता है। वैसे नेलांग ग्राम भी 'च्छोंग्सा' के नाम से लोकप्रिय रहा है। आज भी इस क्षेत्र के मूल निवासियों की पहचान इसी नाम से होती है। यहाँ 'च्छोंग्सा' से अभिप्राय व्यापारी से है। पश्चिमी तिब्बत का भारत के साथ सर्वाधिक व्यापार इसी मार्ग से होता था। अतः तिब्बत का भारत से सर्वाधिक व्यापार होने के कारण यह क्षेत्र 'च्छोंग्सा' कहलाया।[9] च्छोंग्सा चारों ओर से बर्फीले पहाड़ों से घिरा है और समुद्र तल से 11,310 फुट ऊंचा है।

जाड़-भोटिया समुदाय का मूल गाँव नेलांग-जादोंग है, जो भारत-तिब्बत सीमा पर स्थित है। पूर्व में ये लोग ग्रीष्म ऋतु में नेलांग-जादोंग में निवास करते थे एवं शीत काल में इस क्षेत्र में अत्यधिक ठंड होने के कारण अपने भेड़-बकरियों के साथ निचली घाटियों में आ जाते थे। वर्ष 1962 में शीतकाल में चीन ने अचानक भारत पर हमला कर दिया था। सन् 1962 में नेलांग गाँव में करीब 36 और जादोंग गाँव में 16 परिवार रहते थे। उस समय नेलांग और जादोंग गाँव के ग्रामीण भेड़-बकरियों के साथ निचले इलाकों में आए थे। युद्ध की स्थिति को देखते हुए तत्कालीन सरकार ने भारत-चीन (तिब्बत) सीमा पर सेना की टुकड़ी भेजी। नेलांग- जादोंग गाँव के जाड़ समुदाय के लोगों को हर्षिल के समीप बगोरी और डुण्डा में विस्थापित कर दिया गया। वर्तमान में हर्षिल, बगोरी एवं डुण्डा में इस समुदाय के निवास स्थान हैं। बगोरी-हर्षिल तथा डुण्डा उनके क्रमशः ग्रीष्मकालीन और शीतकालीन आवास हैं।

**धर्म, समाज एवं संस्कृति:** जाड़-भोटिया जनजाति धार्मिक दृष्टि से बौद्ध तथा हिन्दू धर्मानुयायी है। यह उत्तराखण्ड की प्रमुख पहाड़ी जनजातियों में से एक है। उनकी अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक विशेषताएँ हैं। व्यापार एवं आर्थिक सम्बन्धों के कारण वे तिब्बतियों के अधिक सम्पर्क में आने के कारण उनकी संस्कृति एवं धार्मिक मान्यताओं से अधिक प्रभावित हो गये। तिब्बत से व्यापार समाप्त होने के उपरान्त वे पुनः तीव्र गति से हिन्दू धर्म एवं भारतीय संस्कृति की ओर उन्मुख हो रहे हैं।[10]

जाड़ वर्ग के अधिकांश देवी-देवता प्रकृति की महान शक्तियाँ हैं। जाड़ जनजाति बौद्ध एवं हिन्दू दोनों मतों के प्रति समान भाव से आस्थावान है। जाड़ परिवारों में हिन्दू एवं बौद्ध धर्म के मतानुकूल पुरोहित एवं लामा से धार्मिक क्रियाएँ सम्पादित होती हैं। रिंगाली देवी तथा डुण्डा देवी सारे गाँव की सार्वजनिक देवियाँ हैं। ग्राम देवताओं में मी-पारम (लाल देवता) प्रमुख हैं। शरद ऋतु में जब सभी परिवार गुनसा (शीतकालीन निवास) की ओर प्रयाण करते हैं, उस समय यह गाँव की रक्षा करता है। मी-पारम के मन्दिर नेलांग, जादोंग तथा हर्षिल-बगोरी में मिलते हैं। जेठ तथा आषाढ़ में देवता की पूजा सामूहिक रूप से होती है। जाड़ समूह में पाँच पांडवों तथा द्रौपदी के प्रति विशेष आस्था एवं अनुराग विद्यमान है। हर्षिल में प्रतिवर्ष पांडव नृत्य होता है। प्रायः सेब तथा राजमा पकने के समय पाण्डव-नृत्य का आयोजन होता है। यह

आयोजन दशहरे के अन्तिम तीन दिन-पूर्व प्रारम्भ होता है। पाण्डवों का मन्दिर गाँव के बीच में है।[11]

जाड़ समुदाय के ग्रामीण भारत-तिब्बत सीमा पर स्थित अपने मूल गाँव जादोंग में ग्राम देवता लाल देवता की विधिवत् पूजा-अर्चना करते हैं। यहाँ पर रिंगाली देवी की देव डोली के साथ पांडव नृत्य और रांसो तांदी का आयोजन किया जाता है। ग्रामीण जून माह में अपने ग्राम देवता-लाल देवता-की पूजा के लिए जाते हैं।

डुण्डा क्षेत्र के वीरपुर में टिहरी रियासत से गुनसा (शीतकालीन निवास) के लिए स्थान मिलने के उपरान्त जाड़ लोग बसने लगे। आरम्भ में उन्हें वीरपुर में फावड़ा, त्रिशूल, चिमटे आदि मिले। कहा जाता है कि यहाँ भगवती के वीर रहते थे। इसी आधार पर इस क्षेत्र को 'वीरपुर'कहा जाता है।[12]

जाड़ समाज पर पश्चिमी तिब्बती जीवन का व्यापक प्रभाव पड़ा था। पशुपालन के साथ-साथ व्यापार पर विशेष रूप से ध्यान केन्द्रित रहने के कारण भोटिया जनजाति पर पश्चिमी तिब्बत में प्रचलित बोन तथा लामा धर्म का प्रभाव पड़ा। उनकी तंत्र-मंत्र की शक्ति, चमत्कार तथा विवेकशून्य कर देनेवाली अद्भुत कायिक साधना के कारण वे लामावाद के प्रभाव में आते चले गये। विगत युग में इस समाज में दैनिक जीवन की प्रत्येक समस्याओं का समाधान लामा के द्वारा ही होता था। फलतः जीवन के प्रत्येक पथ पर इसका प्रभाव पड़ना समीचीन है। यद्यपि इनकी सनातन धर्म में पूरी आस्था है।[13]

जाड़-भोटिया समाज बौद्ध और हिन्दू दोनों परम्पराओं और रीति-रिवाज़ों को मानते हैं। हर्षिल-बगोरी एवं डुण्डा गाँव में बौद्ध मन्दिर में भिक्षुओं द्वारा तिब्बती शास्त्रों का पाठ एवं प्रार्थनाएँ की जाती हैं। गाँव के लोग प्रातः पूजा करने मन्दिर जाते हैं और मन्दिर और बौद्ध स्तूप की परिक्रमा करते हैं। इस प्रकार इस समुदाय में बौद्ध एवं हिन्दू धर्म की मिली-जुली संस्कृति आज भी विद्यमान है।

जिले के जनजातीय गाँवों में महिला लिंगानुपात कम है। इसी कारण यहाँ के जाड़ समुदाय में लड़कों के विवाह सम्बन्ध प्रायः अपर किन्नौर के विभिन्न गाँवों से होते थे और आज भी मिलते हैं। वहाँ महिलाओं की संख्या पुरुषों से अधिक है।[14] घर-जवाई रखने की परम्परा भी जाड़ समुदायों में मिलती है। प्रायः घर-जवाई स्थानीय न होकर ये किन्नौर क्षेत्र के गाँवों से अधिक हैं।

दाह-संस्कार:- भोटिया समाज में किसी व्यक्ति की मृत्यु होने पर उसके नाम से गोम्पा में 108 दीए जलाए जाते हैं। अन्तिम संस्कार का समय-निर्धारण एवं रस्म लामा द्वारा की जाती है।

बोली-भाषा: जाड़ भोटिया समुदाय द्वारा बोली जानेवाली भाषा को भोटिया भाषा के नाम से जाना जाता है। यहाँ 'भोटिया'भाषा का अर्थ भोट देश (तिब्बत) के लोगों द्वारा बोली जानेवाली भाषा से है। इस भाषा में कुछ शब्द तिब्बती भाषा के समान है। इसका कारण भोटियाओं का सदियों से तिब्बत से व्यापार होने के कारण उनके सम्पर्क में होने के कारण है। व्यापार को सुगम बनाने की दृष्टि से भोटियाओं ने तिब्बती भाषा भी सीखी, जिससे उनकी अपनी बोली में भी कुछ शब्द तिब्बती के आ गये।

वेश-भूषा:- तिब्बत के समीपवर्ती क्षेत्र के निवासी होने तथा दीर्घकाल तक तिब्बत से व्यापारिक सम्बन्ध रहने के कारण इन भोटिया लोगों की बोली में तिब्बती शब्दों का समावेश होना तथा इनकी वेशभूषा और खानपान में कुछ साम्य होना स्वाभाविक है।[15]

ग्रीष्मकालीन एवं शीतकालीन निवास-जाड़-भोटियाओं के सामान्यतः दो निवास स्थल होते हैं-एक, शीतकालीन तथा दूसरा, ग्रीष्मकालीन। दोनों निवास स्थलों में निवास की अवधि लगभग छह-छह माह होती है। शीतकालीन निवास गर्म घाटियों में तथा ग्रीष्मकालीन निवास तिब्बती सीमा के निकट उच्च हिमालयी क्षेत्र में होते

हैं। जाड़ समुदाय ग्रीष्मकाल के प्रारम्भ होने पर अपने शीतकालीन निवास से अपनी भेड़-बकरियों के साथ उच्च हिमालयी क्षेत्र की ओर प्रस्थान करता है। वर्तमान में जाड़-भोटियाओं का शीतकालीन निवास डुण्डा एवं ग्रीष्मकालीन निवास हर्षिल-बगोरी है। तिब्बत व्यापार की समाप्ति पर अब अधिकांश भोटिया परिवार स्थायी हो चुके हैं।

**उत्सव एवं त्यौहार:** लोसर- उत्तरकाशी के डुण्डा गाँव में निवास करनेवाली जाड़ भोटिया जनजाति की लोक मान्यताओं एवं परम्पराओं में तिब्बती प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। बौद्ध धर्म की परम्पराओं से जुड़ा समाज होने के कारण इनके द्वारा मनाया जानेवाला त्यौहार 'लोसर' (लो-नया, सर-साल) नववर्ष के आगमन के रूप में डुण्डा में रहनेवाले जाड़, किन्नौरी व खाम्पाओं (तिब्बतियों) द्वारा फरवरी के प्रथम सप्ताह में आयोजित किया जाता है। लोसर त्यौहार को तीन दिन तक मनाया जाता है। अन्तिम दिवस लुगता (झण्डा) फहराया जाता है।[16] लोसर पर्व पर घरों में पुराने झण्डे उतारकर नये झण्डे फहराये जाते हैं। लोसर को स्थानीय भाषा में 'लोतड़'भी कहा जाता है।

व्यापार, कृषि एवं पशुपालन:

भोटियाओं के व्यापार को दो भागों में वाँटा जा सकता है- 1. ग्रीष्मकालीन 2. शरद्कालीन। उनके ग्रीष्मकालीन व्यापार में विभिन्न प्रकार के रंग, बटन, चाकू, नील, क्रॉकरी, तम्बाकू, मसाले, गुड़, चीनी, चाय, स्टेशनरी, गेहूँ, चावल, जौ, महुआ आदि होते थे, जिन्हें वे तिब्बत ले जाते थे। इस सामान के विनिमय में तिब्बती व्यापारियों से अनेक तिब्बती सामान खरीदते थे, जिन्हें वे शरद काल में भारतीय बाज़ारों में बेचते थे। इनमें ऊन, फर, भेड़, बकरी, घोड़े, खच्चर, खाल, चमड़ा, स्वर्ण भस्म, नमक इत्यादि होते थे। अनेक शताब्दियों तक भोटियाओं का भारत-तिब्बत व्यापार पर एकाधिकार था। भोटियाओं में ग्रीष्म एवं शरद्कालीन व्यापार एक-दूसरे के पूरक थे और वे उनकी आर्थिक संरचना के अभिन्न अंग थे।[17]

वर्ष 1962 से पूर्व भोटियों का तिब्बत के साथ व्यापारिक सम्बन्ध सदियों से चला आ रहा था। विषम भौगोलिक परिस्थितियों के होने से जनजाति घुमन्तू एवं व्यापारिक गतिविधियों से जुड़कर अपनी आजीविका को चलाती रही है। हिमालय के मध्य विभिन्न दर्रों (गिरिद्वारों) के समीप बसे होने के कारण तिब्बत काफी निकट पड़ता था। ये अपनी भेड़ों, बकरियों, घोड़ों को लेकर ग्रीष्मकाल में ऊँचे बुग्यालों (चरागाहों) में चले जाते थे और शीतकाल आरम्भ होते ही निचली गर्म घाटियों में स्थित अपने गाँवों में वापस आ जाते थे। भारत-चीन आक्रमण से पूर्व भोटान्तिक ग्रीष्मकाल के आरम्भ में बर्फ के पिघल जाने के बाद इन गिरिद्वारों से होकर अपनी भेड़ों-बकरियों व खच्चरों में भारत से चीनी, चाय, तम्बाकू, सूती तागा व अन्य आवश्यक वस्तुओं को तिब्बत व्यापार के लिए ले जाते थे। वस्तुओं व सामान के बदले वहाँ से सुहागा, हींग, फरण (फाण), चैरु, लादा, चंवर व अन्य वस्तुओं को लाते थे।[18] धरासू में रामसिंह तथा टिहरी में चन्द्रसिंह की स्थायी दुकानें थीं, जिनमें तिब्बत से आयातित वस्तुएँ सदैव सुलभता से प्राप्त हो जाती थीं।[19]

तिब्बत के छपरंग मठ व थोलिंग मठ में स्थित व्यापारिक मण्डियों में आने पर एक सफेद वस्त्र का थान, चन्दन व रुपया भोटिया व्यापारियों को देना होता था। छपरंग व थोलिंग मठ आदि मुख्य मण्डियाँ थीं।[20] नेलांग-जादोंग मार्ग द्वारा पश्चिमी तिब्बत के प्रसिद्ध बौद्ध मठ थोलिंग पहुँचा जा सकता है। वास्तव में पश्चिमी तिब्बत का भारत के साथ सर्वाधिक व्यापार इसी मार्ग से होता था। 11वीं शती में थोलिंग मठ की स्थापना के बाद इस मार्ग से आवागमन और अधिक बढ़ गया।[21]

व्यापार प्रायः जून के महीने से आरम्भ होता था। तिब्बत में व्यापार हेतु प्रस्थान से पूर्व पूजोपचार किए जाते थे। व्यापारियों को ग्रामवासी 'सुम्दू'के निकट तक छोड़ आते थे। इस व्यापार-यात्रा में सबसे आगे 'फोन्या'(मान्य भोटांतिक) चलता था। उसके पीछे एक बड़ा बकरा जिसके गले में घंटी बंधी होती थी। उसके पीछे भेड़-बकरे, गधे और घोड़े तथा फिर भोटांतिक और कुत्ते चलते थे। इसी क्रम में भोटांतिकों की टोलियाँ चलती थीं।[22]

भोटिया जनजाति का मुख्य आधार पशुपालन (भेड़-बकरी पालन) व ऊन उद्योग रहा है। भेड़-बकरियों को ऊन प्राप्त करने के साथ-साथ भारवाहक के रूप में भी उपयोग किया करते थे।[23]इनकी भेड़ बकरियाँ ही पहाड़ की माल-गाड़ियाँ थीं।[24]

आज अस्सी प्रतिशत भोटिया व्यक्ति ऊनी कारोबार से जुड़े हुए हैं। कुछ परिवारों के पास अपनी ही भेड़ों की ऊन होने से कताई-बुनाई की जा रही है। दूसरे वे हैं जो अन्य परिवारों से ऊन खरीदकर ऊनी कारोबार में संलग्न हैं। आज ऊन उद्योग को बढ़ावा देने के लिए उत्तराखण्ड सरकार ने इस क्षेत्र के हर्षिल, भटवाड़ी, उत्तरकाशी आदि स्थानों में 'प्रशिक्षण केन्द्र'खोले हैं जहाँ पर नवीनतम तकनीक से ऊन उद्योग को संचालित करने की जानकारियाँ दी जाती हैं।[25]

आलू, राजमा, सेब आदि की खेती करके ये अपना जीवन-यापन करते हैं। डुण्डा तथा अन्य क्षेत्रों में इनका मुख्य व्यवसाय ऊन का है। प्रारम्भ में ये लोग पशुचारण तथा व्यापार पर निर्भर थे, परन्तु वर्तमान में स्थायी खेती होने लगी है। कुछ लोग पशुपालन करते हैं। ये ऊन के वस्त्रों का भी व्यापार करते हैं। शीतकाल में डुण्डा में स्थान-स्थान पर भेड़ तथा बकरी के बालों से निर्मित वस्त्र सजे हुए दिखाई देते हैं।[26]

**जड़ी-बूटी व्यवसाय**: हिमालयी क्षेत्र में उगनेवाले समस्त पादपों (वनस्पतियों) में औषधीय गुण पाये जाते हैं। जाड़-भोटिया समुदाय उच्च हिमालयी क्षेत्रों से लाकर इसका व्यवसाय करते हैं। एक तरह से इन औषधीय जड़ी-बूटियों के लिए व्यवसायी व अन्य आम लोग जाड़-भोटिया समुदाय पर ही निर्भर रहते हैं। इन जड़ी-बूटियों में जटामासी, अतीश, लादू, चोरा, कुटकी, शिलाजीत, हींग, हरड़, बहेड़ा, धतूरा, तेजपात आदि प्रमुख हैं।

**निष्कर्ष**

उपरोक्त अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उच्च हिमालयी क्षेत्र में भारत-तिब्बत सीमा पर निवास करनेवाली जाड़-भोटिया जनजाति के लोग जहाँ एक ओर वैश्वीकरण के इस दौर में विकास की ओर अग्रसर हैं वहीं अपनी संस्कृति एवं परम्परा को भी संजोए हुए हैं। सरकार की वाइब्रेट विलेज योजना के तहत जादुंग गाँव को फिर से बसाने की योजना है, जिसके तहत खंडहर हो चुके घरों का जीर्णोद्धार किया जाएगा। इससे जहाँ एक ओर इस सीमान्त क्षेत्र में पर्यटन को बढ़ावा मिलेगा, वहीं आम लोग इस क्षेत्र विशेष की संस्कृति से भी परिचित होंगे।

**सन्दर्भ**


1. उत्तरांचल की भोटिया जनजाति, सुभाष चन्द्र शर्मा, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2002, पृ. 29
2. उत्तराखण्ड हिमालय समाज एवं संस्कृति, दीपक डोभाल, हर्षिता प्रकाशन, दिल्ली, 2015, पृ.10
3. उत्तरांचल की भोटिया जनजाति, सुभाष चन्द्र शर्मा, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2002, पृ. 16
4. उत्तरांचल की भोटिया जनजाति, सुभाष चन्द्र शर्मा, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2002, पृ. 17
5. उत्तराखण्ड के भोटांतिक, शिवप्रसाद डबराल, वीरगाथा प्रकाशन, दोगड्डा गढ़वाल, 1995, पृ. 20
6. उत्तराखण्ड के भोटांतिक, शिवप्रसाद डबराल,

वीरगाथा प्रकाशन, दोगड्डा गढ़वाल, 1995, पृ. 56-57
7. राहुल वांगमय, प्रागैतिहासिक युग में किन्नर, खण्ड-7, जिल्द-3, कमला सांकृत्यायन (संपा.), राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1994, पृ. 55
8. उत्तराखण्ड के भोटांतिक, शिवप्रसाद डबराल, वीरगाथा प्रकाशन, दोगड्डा गढ़वाल, 1995, पृ. 23
9. मध्य हिमालय की जाड़ जनजाति का सांस्कृतिक संघर्ष, सुरेश ममगांई, साहित्य सहकार प्रकाशन, दिल्ली, 2016, पृ. 20
10. उत्तरांचल की भोटिया जनजाति, सुभाष चन्द्र शर्मा, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2002पृ. 31, 32
11. मध्य हिमालय की जाड़ जनजाति का सांस्कृतिक संघर्ष, सुरेश ममगांई, साहित्य सहकार प्रकाशन, दिल्ली, 2016, पृ. 93
12. मध्य हिमालय की जाड़ जनजाति का सांस्कृतिक संघर्ष, सुरेश ममगांई, साहित्य सहकार प्रकाशन, दिल्ली, 2016, पृ. 97
13. मध्य हिमालय की जाड़ जनजाति का सांस्कृतिक संघर्ष, सुरेश ममगांई, साहित्य सहकार प्रकाशन, दिल्ली, 2016, पृ. 106
14. मध्य हिमालय की जाड़ जनजाति का सांस्कृतिक संघर्ष, सुरेश ममगांई, साहित्य सहकार प्रकाशन, दिल्ली, 2016, पृ. 22
15. उत्तरांचल की भोटिया जनजाति, सुभाष चन्द्र शर्मा, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2002, पृ. 30
16. उत्तराखण्ड हिमालय समाज एवं संस्कृति, दीपक डोभाल, हर्षिता प्रकाशन, दिल्ली, 2015, पृ. 28
17. उत्तरांचल की भोटिया जनजाति, सुभाष चन्द्र शर्मा, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2002, पृ. 30, 31
18. उत्तराखण्ड हिमालय समाज एवं संस्कृति, दीपक डोभाल, हर्षिता प्रकाशन, दिल्ली, 2015, पृ.29
19. उत्तराखण्ड के भोटांतिक, शिवप्रसाद डबराल, वीरगाथा प्रकाशन, दोगड्डा गढ़वाल, 1995, पृ. 120
20. उत्तराखण्ड के भोटांतिक, शिवप्रसाद डबराल, वीरगाथा प्रकाशन, दोगड्डा गढ़वाल, 1995, पृ. 43
21. मध्य हिमालय की जाड़ जनजाति का सांस्कृतिक संघर्ष, सुरेश ममगांई, साहित्य सहकार प्रकाशन, दिल्ली, 2016, पृ. 20
22. मध्य हिमालय की जाड़ जनजाति का सांस्कृतिक संघर्ष, सुरेश ममगांई, साहित्य सहकार प्रकाशन, दिल्ली, 2016, पृ. 73
23. उत्तराखण्ड हिमालय समाज एवं संस्कृति, दीपक डोभाल, हर्षिता प्रकाशन, दिल्ली, 2015, पृ. 31
24. मध्य हिमालय की जाड़ जनजाति का सांस्कृतिक संघर्ष, सुरेश ममगांई, साहित्य सहकार प्रकाशन, दिल्ली, 2016, पृ. 74
25. उत्तराखण्ड हिमालय समाज एवं संस्कृति, दीपक डोभाल, हर्षिता प्रकाशन, दिल्ली, 2015, पृ.33
26. मध्य हिमालय की जाड़ जनजाति का सांस्कृतिक संघर्ष, सुरेश ममगांई, साहित्य सहकार प्रकाशन, दिल्ली, 2016, पृ. 23

◆शोधार्थी, इतिहास विभाग
उत्तराखण्ड मु.वि.वि. हल्द्वानी (उत्तराखण्ड)
पता- जिला चिकित्सालय परिसर,
उत्तरकाशी-249193 (उत्तराखण्ड)
ई-मेल- upd1304@gmail.com
मो.नं.-7055568260